श्रीयुत स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीनिर्मित निम्नलिखित पुस्तक पठन,पा
विषयक सुगम संस्कृत और आर्य्यभाषा विवृति सहित क्रम से इस वैदिक यन्त्राल
में छपेंगे उन में से—

१	वर्णोच्चारण शिक्षा	छपगई ≠)	९	आख्यातिकः।	
२	संस्कृतवाक्यप्रबोधः	छपगया ।≠)	१०	अव्ययार्थः।	
३	व्यवहारभानुः।	छपगया ।)	११	सौवरः।	
४	सन्धिविषयः।	छपगया ≢)	१२	पारिभाषिकः।	
५	नामिकः।	छपगया ≢)	१३	उणादिगणः।	
६	कारकीयः।	छपगया ।≠)	१४	गणपाठः।	
७	सामासिकः।	छपगया ≢)	१५	अष्टाध्यायी।	
८	स्त्रैणताद्धितः।	छपगया ॥	१६	निघंटु अर्थात् यास्कमुनि कृतो वैदिक कोषः।	

भूमिका ॥

यह अष्टाध्यायी का पांचवां भाग और पठन पाठन में आठवां पुस्तक है मैंने इस को बनाना आवश्यक इस लिये समझा है कि पढ़ने पढ़ाने वालों को स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का भी बोध होना अवश्य उचित है इस के जाने बिना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है वैसा अन्य से नहीं हो सकता इस में थोड़ासा तो स्त्री प्रत्यय का प्रकरण है बाकी दोनों अध्याय तद्धित के ही हैं। इन में से मुख्य २ सूत्र जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृत में उपयुक्त हैं उन को लिख कर भाष्य के वार्तिक कारिका उदाहरण प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं जिस से स्त्री प्रत्यय और तद्धित का भी यथावत् बोध हो। इस में बहुत कर के उत्सर्ग और अपवाद के सूत्र हैं जैसे प्राग्दीव्यतीय के अपवाद सब तद्धित सूत्र और अण् का अपवाद इञ् और इञ् के अपवाद यञ् आदि प्रत्यय हैं जो अपवाद सूत्र हैं वे उत्सर्ग के विषय ही में प्रवृत्त होते हैं उन से जो बाकी विषय रहता है सो उत्सर्ग का होता है परन्तु अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र कभी प्रवृत्त नहीं होते जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक राजा और माण्डलिक के राज्य में कुछ थोड़े ग्राम वाले उन के विषय में कुछ थोड़ी भूमी वाले अपवादवत् और बड़े राज्य वाले उत्सर्गवत् होते हैं वैसे ही सूत्रों में भी समझना चाहिये। कोटी २ धन्यवाद परमात्मा को देना चाहिये कि जिसने अपनी वेद विद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों को परम हित किया है कि जिस को पढ़ के महामुनि पाणिनि सदृश पुरुष हो गये जिन्हों ने

हज़ार श्लोक युक्त छोटे ही ग्रंथ अष्टाध्यायी और कुछ कम चौबीस
हज़ार श्लोकों के बीच महाभाष्य ग्रंथ में समग्र वेद और लौकिक
संस्कृत शब्द रूपी महासमुद्र को भी यथायोग्य सिद्ध करके विदित
करा दिया है कि जिसने एक शब्द भी बाकी नहीं रह गया उन को
भी अनेक धन्यवाद देना चाहिये कि जो हमलोगों पर बड़ा उपकार कर
गये हैं वैसे उन को भी धन्यवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रंथों के
पढ़ने पढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्कपट हो कर तन मन धन से प्रवृत्त
रहते हैं क्यों कि। तदधीते तद्वेद। जो विद्यमान व्याकरण को पढ़ें
और पढ़ावें उन्हीं को वैयाकरण कहते हैं। और जो महायोगी मुनि
संपूर्ण गुण युक्त निर्दोष शास्त्र को छोड़ कर अपनी क्षुद्र बुद्धि से प्रतिष्ठा
के लिये अकिंचित्कर वेद विद्या रहित सारस्वत चन्द्रिका मुग्धबोध
कौमुदी और सिद्धान्त कौमुदी आदि अयुक्त ग्रंथ रच के परम पुनीत
ग्रंथों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्धक हो गये हैं उनको न वैयाकरण और न
हितकारी समझना चाहिये प्रत्युत अहितकारी हैं क्यों कि जो
व्याकरण का संपूर्ण बोध तीन वर्षों में यथार्थ हो सकता है उस को
ऐसा कठिन और अव्यवस्थित किया है कि जिस को पचास वर्ष तक
पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को यथार्थ नहीं जान सकते उन के
लिये धन्यवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है॥ जो इस ग्रंथ में
सूत्र के आगे अङ्क हैं सो इनको सूत्र संख्या और अ० संकेत से अष्टा
ध्यायी। १ से अध्याय। २ से पाद और ३ से सूत्र संख्या समझनी
चाहिये।

॥ इति भूमिका॥

॥ अथ स्त्रैणताद्धितः ॥

स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अ० ४ । १ । ३ ॥

यह अधिकार सूत्र है । इस से आगे जो प्रत्यय विधान करेंगे सो सब स्त्री प्रकरण में जानना चाहिये ॥ १ ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ २ ॥ अ० ४ । १ । ४ ॥

जो स्त्री अभिधेय हो तो अजादि गणपठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो जैसे अजादि । अजा । एडका कोकिला । चटका । इत्यादि । अदन्त । खट्वा । देवदत्ता । माला । शाला । इत्यादि । अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचक होते हैं तब सब से टाप् ही हो जाता है अर्थात् स्त्री लिङ्ग में अदन्त कोई शब्द नहीं रहता ॥ २ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ॥ ३ ॥ अ० । ७ । ३ । ४४ ॥

आप् परे हो तो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो अत् उस को इकार आदेश हो परन्तु जो वह आप् सुप् से परे न हो तो जैसे । जटिलिका । मुण्डिका । [illegible] । कारिका । पाचिका । पाठिका । इत्यादि । प्रत्ययस्थ इस लिये है कि । शक्नोतीति शका । ककार से पूर्व इस लिये कहा है कि । नन्दना । रमणा । पूर्व को इत्व इस लिये कहा है कि । कटुका । यहां अत् को न हुआ । अकार को इत्व इस लिये कहा है कि । गोका । यहां न हो । तपर करण इस लिये है कि । राका । धाका । यहां इत्व न हो । आप् के परे इस लिये कहा है कि । कारकः । धारकः । यहां न हो । असुप् इस लिये है कि । बहवः परिव्राजका यस्यामिति बहुपरिव्राजका वाराणसी ॥ ३ ॥

वा०—मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात् ॥ ४ ॥

सुप् रहित आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो जैसे । ममेयं मामिका । नरान् कायतीति नरिका ॥ ४ ॥

वा०—प्रत्ययनिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम् * ॥ ५ ॥

सुप् रहित आप् परे हो तो त्यक् और त्यप् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो जैसे । दाक्षिणात्यिका । इहत्यिका † । इत्यादि ॥ ५ ॥

---

* यह वार्त्तिक इस लिये कहा है कि (उदीचा०) इस अगले सूत्र से [illegible] इस [illegible] हो जावे ।

† यहां इहत्या शब्द से (इहत्यावाम्[illegible]) इस [illegible] और [illegible] शब्द है । [illegible]) इस [illegible] हुआ है ।

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्री विषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०–यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकनउपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो ह्रस्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी ह्रस्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०–पावकादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में ह्रस्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्द ग्रहण इस लिये है कि । पाविका । अलोमिका । यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०–आशिषि चोपसंख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को ह्रस्व न हो, जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०–उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तर पद का जहां लोप हो वहां ह्रस्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०–क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में ह्रस्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०–तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योति ग्रहण इस लिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहीं ॥ १२ ॥

वा०–वर्णका तान्तव उपसंख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्त्तमान वर्णका शब्द को ह्रस्व न हो जैसे । वर्णका प्रावर्णभेदः । तान्तव इस लिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां न हो ॥ १३ ॥

* यहां भी पूर्व के [illegible] ([illegible]) यहां पहले सूत्र से विकल्प प्राप्त है सो निषेध कर दिया [illegible]

वा०—वर्त्तिका शकुनौ प्राचामुपसंख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तिका शब्द हो वहां इस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनि ग्रहण इस लिये है कि । वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य । यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदेवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवता कर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदेवत्य इस लिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसंख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत् ग्रहण इस लिये है कि । सांकाश्ये भवा सांकाश्यिका । यहां न हो । यकपूर्व ग्रहण इस लिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । पर्याकिका इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्री विषय में जो भस्त्रा । एषा । अजा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । अजका । अजिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अजका । अजिका । अज्ञका । अज्ञिका । अस्वका । अस्विका । इत्यादि * ॥ १९ ॥

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को उदाहरण इस लिये नहीं दिया कि जो समास को प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है उसी से परे टाप् होता है इस कारण लुप् रहित आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ।

अभाषितपुंस्काच्च ॥ २० ॥ अ० ७ । ३ । ४८ ॥

जो अभाषितपुल्लिंग से परे आत् के स्थान में अकार उस को उदीच्य आचार्यों के मत में इत् आदेश न हो। खट्विका। खट्वका। अखट्वका। अखट्विका परमखट्विका। परमखट्वका। इत्यादि ॥ २० ॥

आदाचार्याणाम् * ॥ २१ ॥ अ० ७ । ३ । ४९ ॥

आचार्यों के मत में स्त्री विषय में अभाषितपुंस्क-प्रातिपदिकों से परे जो आत् के स्थान में अकार उस को आत् आदेश हो। खट्वाका। अखट्वाका। परमखट्वाका इत्यादि ॥ २१ ॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥ २२ ॥ अ० । ४ । १ । ५ ॥

स्त्रीविषय में ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे ऋकारान्त। कर्त्री। हर्त्री। पक्त्री। इत्यादि। नकारान्त। हस्तिनी। मालिनी। दण्डिनी। धनिनी इत्यादि ॥ २२ ॥

उगितश्च ॥ २३ ॥ अ० ४ । १ । ६ ॥

स्त्रीविषय में जो उगित् शब्द रूप है उस से और तदन्त प्रातिपदिकों से भी ङीप् प्रत्यय हो जैसे। भवती। अतिभवती। पचन्ती। यजन्ती। इत्यादि ॥ २३ ॥

वा०-धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक् जिस का इत् गया हो ऐसे क्विप् आदि अविद्यमान प्रत्ययान्त धातु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। उखास्रत्। पर्णध्वत् † प्राङ्‌भी ॥ २४ ॥

वा०-अञ्चतेश्चोपसंख्यानम् ॥ २५ ॥

उगित् धातु से जो ङीप् का निषेध किया है वहां अञ्चु का उपसंख्यान अर्थात् उस से ङीप् का निषेध न हो जैसे। प्राची। प्रतीची। उदीची ॥ २५ ॥

वनो र च ॥ २६ ॥ अ० ४ । १ । ७ ॥

स्त्री लिङ्ग में वन्नन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो और उस नकार को रेफ आदेश हो जावे जैसे। धीवरी। पीवरी। शर्वरी। इत्यादि ॥ २६ ॥

---

* यहां आचार्य शब्द के बहुवचन निर्देश से सर्वत्र आचार्यों का मत समझना चाहिये।

† यहां अञ्च और भ्रंसु धातु से क्विप् प्रत्यय के परे नकार को पदान्त में नकार (अनुस्वार०) इस से [illegible] हो गया है।

वा०—वनो न हशः ॥ २७ ॥

हश् प्रत्याहार से परे जो वन् तदन्त से ङीप् न हो जैसे । सहयुध्वा ० मात

पादोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ अ० ४ । १ । ८ ॥

स्त्री अर्थ में पाद शब्दान्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीप् प्र
जैसे । द्विपदी । द्विपाद् । त्रिपदी । त्रिपाद् । चतुष्पदी । चतुष्पाद् । इत्यादि

टाबृचि ॥ २९ ॥ अ० ४ । १ । ९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऋग्वेद विषयक पाद शब्दान्त प्रातिपदिकों से
त्यय हो जैसे । द्विपदा ऋक् । त्रिपदा ऋक् । चतुष्पदा ऋक् । ऋक् ग्रहण
लिये है कि । द्विपदी इयसी । यहां टाप् न हो ॥ २९ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ ३० ॥ अ० ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञक और स्वसृ आदि गणपठित प्रातिपदिकों से स्त्री प्रत्यय न हो जै
पञ्च ब्राह्मण्यः । सप्त नव दश वा । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता
तिस्रः । चतस्रः । इत्यादि यहां ऋकारान्त शब्दों से ङीप्, और पञ्च आदि ष
संज्ञकों से अन्य नकार का लोप हो के अदन्तों से टाप् प्रत्यय प्राप्त है सो दोनों
का निषेध समझना चाहिये ॥ ३० ॥

मनः ॥ ३१ ॥ अ० ४ । १ । ११ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे ।
दामा । दामानौ । दामानः । पामा । पामानौ । पामानः । सीमा । सीमानौ ।
सीमानः । अतिमहिमा । अतिमहिमानौ । अतिमहिमानः । इत्यादि ॥ ३१ ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ ३२ ॥ अ० । ४ । १ । १२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्नन्त बहुव्रीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे ।
सुपर्वा । सुपर्वाणौ । सुपर्वाणः । सुचर्मा । सुचर्माणौ । सुचर्माणः । इत्यादि । बहुव्रीहि
ग्रहण इस लिये है कि । अतिक्रान्ता राजानमतिराज्ञी । यहां तत्पुरुष
समास में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ३३ ॥ अ० ४ । १ । १३ ॥

जो मन्नन्त प्रातिपदिक और अन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकान्त बहुव्रीहि समास
हो तो उन से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प कर के डाप् प्रत्यय होता है जैसे । मन्नन्त । दामा ।

* यहां पर अन्तर [illegible] ([illegible]) [illegible] और यह [illegible]
[illegible]

पामे। पामा:। सीमा। सीमे। सीमा:। पक्ष में। पामा। पामानौ। पामान:। सीमा। सीमानौ। सीमान:। परन्तु बहुव्रीहि समास। बहवो राजानो यस्यां नगर्य्यां सा बहुराजा नगरी। बहुराज्ञी नगर्य्यौ। बहुराजा नगर्य्य:। बहुतक्षा। बहुतक्षे। बहुतक्षा:। पक्ष में। बहुराजा। बहुराजानौ। बहुराजान:। बहुतक्षा। बहुतक्षाणौ। बहुतक्षाण:। यहां अन्यतरस्याम् ग्रहण इस लिये है कि (वनोरच) इस सूत्र के विषय में भी विकल्प हो जावे जैसे। बहुधीवा। बहुधीवरी। बहुपीवा। बहुपीवरी इत्यादि ॥ ३३ ॥

अनुपसर्ज्जनात् ॥ ३४ ॥ अ० ४। १। १४॥

यहां से आगे जिस २ प्रत्यय का विधान करेंगे सो २ अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में मुख्य प्रातिपदिकों से होंगे। इस लिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ३४ ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥ ३५ ॥ अ० ४। १। १५॥

यहां अदन्त की अनुवृत्ति सर्वत्र चली आती है परन्तु जहां संभव होता है वहां विशेषण किया जाता है। ट। अण्। अञ्। द्वयसच्। दघ्नच्। मात्रच्। तयप्। ठक्। ठञ्। कञ्। और क्वरप्। ये प्रत्यय जिन के अन्त में हों उन और अदन्त अनुपसर्जन टित् प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। टित्। कुरुचरी। मद्रचरी। ट। आग्नेयी। सौपर्णेयी। वैनतेयी। अण्। औपगवी। कुम्भकारी। नगरकारी। अञ्। औत्सी। औदपानी। द्वयसच्। ऊरुद्वयसी। जानुद्वयसी। दघ्नच्। ऊरुदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रच्। ऊरुमात्री। जानुमात्री। तयप्। द्वितयी। चतुष्टयी। पंचतयी। ठक्। आक्षिकी। शालाकिकी। ठञ्। लावणिकी। कञ्। यादृशी। तादृशी। क्वरप्। इत्वरी। नश्वरी। यहां अनुपसर्जन ग्रहण इस लिये है कि। बहुकुरुचरा। बहुमद्रचरा मथुरा। इत्यादि से ङीप् न हो यहां टित् आदि अदन्त शब्दों से टाप् प्राप्त है इस लिये उस का अपवाद यह सूत्र समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

वा०—नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ॥ ३६ ॥

नञ्। स्नञ्। ईकक्। ख्युन्। इन प्रत्ययान्त शब्दों और तरुण तलुन शब्दों से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय होवे जैसे। नञ्। स्त्रैणी। स्नञ्। पौंस्नी। ईकक्। शाक्तीकी। याष्टीकी। ख्युन्। आढ्यंकरणी। सुभगंकरणी। तरुणी। तलुनी।

इत्यादि । यहां भी तदन्त प्रातिपदिकों से टाप् ही प्राप्त है इस का अपवाद यह भी वार्त्तिक है ॥ ३६ ॥

यञश्च ॥ ३७ ॥ अ० ४ । १ । १६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । गार्गी । वात्सी । इत्यादि । यहां गर्ग और वत्स शब्दों से यञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ३७ ॥

वा०—अपत्यग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ ३८ ॥

जिस यञ् प्रत्यय का पूर्व सूत्र में ग्रहण है वह अपत्याधिकार का यञ् समझना चाहिये । द्वैपाः वैकताः * । इत्यादि । यहां ङीप् न हो जावे ॥ ३८ ॥

प्राचां ष्फ तद्धितः ॥ ३९ ॥ अ० ४ । १ । १७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्राचीन आचार्यों के मत में तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी † । औरों के मत में । गार्गी । वात्सी ॥ ३९ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ ४० ॥ अ० ४ । १ । १८ ॥

जो लोहित आदि कत पर्यन्त गर्गादि गणपठित अकारान्त शब्द हैं उन से तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है जैसे । लोहितादि । लौहित्यायनी । शांसित्यायनी । बाभ्रव्यायणी । कतन्त । कात्यायनी । इत्यादि ॥ ४० ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ ४१ ॥ अ० ४ । १ । १९ ॥

कौरव्य और माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे । कौरव्यायणी । माण्डूकायनी । इत्यादि ॥ ४१ ॥

वा०—आसुरेरुपसंख्यानम् ॥ ४२ ॥

आसुरि शब्द से भी तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे । आसुरायणी । यहां आसुरि शब्द से अपत्य संज्ञक इञ् प्रत्यय हुआ है । पूर्व (प्राचां ष्फ०) इस सूत्र में तद्धित ग्रहण का प्रयोजन भी यही है कि आसुरि शब्द के इकार का लोप हो जावे ॥ ४२ ॥

* यहां द्वैपिक यञ् प्रत्यय (द्वीपादनुसमुद्रं यञ्) इस से हुआ है इस लिये ङीप् न हुआ किन्तु टाप् हो गया ।

† यहां ष्फ प्रत्यय षित् है इसी से तदन्त से ङीष् प्रत्यय हो जाता है ।

वयसि प्रथमे ॥ ४३ ॥ अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम अवस्था विदित होती हो तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । कुमारी । किशोरी । कलभी । वर्करी । यहां प्रथम अवस्था ग्रहण इस लिये है कि । स्थविरा । वृद्धा । इत्यादि में ङीप् न हो । अकारान्त से इस लिये कहा है कि । शिशुः । यहां ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०-वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

सूत्र में प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था को छोड़ के कहना चाहिये जैसे । वधूटी । चिरण्टी । ये प्रायः यौवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं । प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी ॥ ४४ ॥

द्विगोः ॥ ४५ ॥ अ० । ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान द्विगु संज्ञक अदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो । जैसे पंचमूली । दशमूली । अष्टाऽध्यायी । इत्यादि यहां अत् ग्रहण इस लिये है कि । पंचवस्तिः । यहां ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ ४६ ॥ अ० ४ । १ । २२ ॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त । विस्तान्त । आचितान्त । और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे । पञ्चभिरश्वैः क्रीता । पञ्चाश्वा । दशाश्वा । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । द्विशता । त्रिशता । द्विविस्ता । त्रिविस्ता । द्व्याचिता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । त्रिकम्बल्या । यहां अपरिमाण ग्रहण इस लिये है कि । द्व्याढकी । त्र्याढकी । यहां निषेध न लगे । तद्धित लुक् इस लिये है कि पञ्चाश्वी । यहां भी हो जावे ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ ४७ ॥ अ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो तो क्षेत्रवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान काण्ड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो । द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा । क्षेत्र इस लिये कहा है कि । द्विकाण्डी रज्जुः । यहां निषेध न हो । काण्ड शब्द के अपरिमाण वाची होने से पूर्व सूत्र से ही निषेध हो जाता फिर क्षेत्र ग्रहण नियमार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ अ० ४ । १ । २४ ॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा। द्विपुरुषा। द्विपुरुषी। त्रिपुरुषा। त्रिपुरुषी *। यहां प्रमाण ग्रहण इस लिये है कि। द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा। त्रिपुरुषा। यहां विकल्प कर के ङीप् न हो और तद्धित लुक् इस लिये है कि। द्विपुरुषी। त्रिपुरुषी। यहां समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ ४९ ॥ अ० ४ । १ । २५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। घट इव ऊधांसि यस्याः सा घटोध्नी। कुण्डोध्नी। † यहां बहुव्रीहि ग्रहण इस लिये है कि प्राप्ता ऊधः। प्राप्तोधाः। यहां न हुआ ॥ ४९ ॥

संख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ ५० ॥ अ० ४ । १ । २६ ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हो ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है उस से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। संख्या। द्व्यूध्नी। त्र्यूध्नी। अव्यय। अत्यूध्नी। निरूध्नी। यहां आदि ग्रहण से। द्विविधोध्नी। त्रिविधोध्नी। इत्यादि में भी ङीप् हो जाता है ॥ ५० ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ ५१ ॥ अ० ४ । १ । २७ ॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संख्या जिस के आदि में दामन् तथा हायन अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे। द्वे दामनी यस्याः सा द्विदाम्नी वड़वा। त्रिदाम्नी। द्विहायनी। त्रिहायणी। चतुर्हायणी। ‡ इत्यादि (क्वचिदेकदेशो०) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां अव्यय की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ५१ ॥

---

* यहां [illegible] पुरुष शब्द से भिन्न ही निषेध [illegible] है इस लिये यह [illegible] चाहिये।

† ऊधस् नाम आदि के ऐन को कहते हैं कि जो दूध का स्थान है इस ऊधस् शब्द से जब [illegible] प्रत्यय होने से [illegible] हो जाता है। तब (बहुव्रीहे०) इस सूत्र [illegible] होता है उस का यह अपवाद है।

‡ यहां हायन शब्द अवस्था अर्थ में [illegible] लिये। त्रिहायना शाला इत्यादि में ङीप् नहीं होता।

वयसि प्रथमे ॥ ४३ ॥ अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम अवस्था विदित होती हो तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । कुमारी । किशोरी । कलभी । वर्करी । यहां प्रथम अवस्था ग्रहण इस लिये है कि । स्थविरा । वृद्धा । इत्यादि में ङीप् न हो । अकारान्त इस लिये कहा है कि । शिशुः । यहां ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०-वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

सूत्र में प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था को छोड़ के कहना चाहिये जैसे । वधूटी । चिरण्टी । ये प्राप्तयौवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं । प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी ॥ ४४ ॥

द्विगोः ॥ ४५ । अ० । ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान द्विगु संज्ञक अदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो । जैसे पंचमूली । दशमूली । अष्टाऽध्यायी । इत्यादि यहां अत् ग्रहण इस लिये है कि । पंचवलिः । यहां ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ ४६ ॥ अ० ४ । १ । २२ ॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त । बिस्तान्त । आचितान्त । और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे । पञ्चभिरश्वैः क्रीता । पञ्चाश्वा । दशाश्वा । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । द्विशता । त्रिशता । द्विबिस्ता । त्रिबिस्ता । द्व्याचिता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । त्रिकम्बल्या । यहां अपरिमाण ग्रहण इस लिये है कि । द्व्याढकी । त्र्याढकी । यहां निषेध न लगे । तद्धित लुक् इस लिये है कि पञ्चाश्वी । यहां भी होजावे ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ ४७ ॥ अ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो तो क्षेत्रवाची स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कांड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो । द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा । क्षेत्र इस लिये कहा है कि । द्विकाण्डी रज्जुः । यहां निषेध न हो । काण्ड शब्द के अपरिमाण वाची होने से पूर्व सूत्र से ही निषेध हो जाता फिर क्षेत्र ग्रहण नियमार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ अ॰ ४ । १ । २४ ॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा । द्विपुरुषा । द्विपुरुषी । त्रिपुरुषा । त्रिपुरुषी * । यहां प्रमाण ग्रहण इस लिये है कि । द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा । त्रिपुरुषा । यहां विकल्प कर के ङीप् न हो और तद्धित लुक् इस लिये है कि । द्विपुरुषी । त्रिपुरुषी । यहां समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ ४९ ॥ अ॰ ४ । १ । २५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो । घट इव ऊधांसि यस्याः सा घटोध्नी । कुण्डोध्नी । † यहां बहुव्रीहि ग्रहण इस लिये है कि प्राप्ता ऊधः । प्राप्तोधाः । यहां न हुआ ॥ ४९ ॥

संख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ ५० ॥ अ॰ ४ । १ । २६ ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हों ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है उस से ङीप् प्रत्यय हो । जैसे । संख्या । द्व्यूध्नी । त्र्यूध्नी । अव्यय । अत्यूध्नी । निरूध्नी । यहां आदि ग्रहण से । द्विविधोध्नी । त्रिविधोध्नी । इत्यादि में भी ङीप् हो जाता है ॥ ५० ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ ५१ ॥ अ॰ ४ । १ । २७ ॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान संख्या जिस के आदि में दामन् तथा हायन अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे । द्वे दामनी यस्याः सा द्विदाम्नी वडवा । त्रिदाम्नी । द्विहायनी । त्रिहायणी । चतुर्हायणी । ‡ इत्यादि (क्वचिदेकदेशो॰) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां ऊधस् की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ५१ ॥

---

* यहां अपरिमाणान्त पुरुष शब्द से भिन्न भी निषेध प्राप्त है इस लिये यह सूत्र विभाषा समझनी चाहिये ।

† ऊधस् गाय आदि के थन को कहते हैं कि जो दूध का स्थान है इस ऊधस् शब्द से जब समासान्त अनङ् प्रत्यय होने से नकार हो जाता है, तब (अनोबहु॰) इस पूर्व लिखित सूत्र से डाप् और निषेध प्राप्त होता है उस का यह अपवाद है ॥

‡ यहां हायन शब्द वयस् अर्थ में समझना चाहिये जो प्राणी के साथ संबन्ध रखती है इसी लिये । त्रिहायना शाला इत्यादि में ङीप् नहीं होता ।

अनउपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५२ ॥ अ०-४ । १ । २८ ॥

जो अवन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक है उस से स्त्रीलिंग में विकल्प कर के ङीप् प्रत्यय हो । जैसे । बहुराजा । बहुराज्ञी । बहुराज्ञे । बहुतक्षा । बहुतक्ष्णी बहुतक्षे * अवन्त ग्रहण इस लिये है कि । बहुमत्स्या । यहां ङीप् न हो । और उपधालोपी इस लिये है कि । सुपर्वा । सुपर्वाणौ । सुपर्वाणः । इत्यादि में न हो ॥ ५२ ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ ५३ ॥ अ० ४ । १ । २९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अवन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से संज्ञा और वेद विषय में ङीप् प्रत्यय नित्य ही होवे । जैसे संज्ञा में । सुराज्ञी । अतिराज्ञी नाम ग्रामः । छन्द में । गौः पञ्चदाम्नी । द्विदाम्नी । एकदाम्नी । एकमूर्ध्नी । समानमूर्ध्नी । पूर्व सूत्र में जो विकल्प है उस का नित्य विधान के लिये यह अपवाद सूत्र है । जहां संज्ञा और वैदिक प्रयोग न होवें वहां ङीप् न होगा । जैसे । सुराजा । इत्यादि ॥ ५३ ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमंगल-
भेषजाच्च ॥ ५४ । अ० । ४ । १ । ३० ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल । मामक । भागधेय । पाप । अपर । समान । आर्य्यकृत । सुमंगल । और भेषज शब्द हों तो इन प्रातिपदिकों से संज्ञा और वेद विषय में ङीप् प्रत्यय हो । केवली । मामकी । मित्रावरुणयोर्भागधेयी । पापी । उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये । समानी । आर्य्यकृती । सुमंगली । भेषजी । जहां संज्ञा और वेद विषय न हो वहां टाप् होकर केवला । इत्यादि प्रयोग होंगे ॥ ५४ ॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ५५ ॥ अ० । ४ । १ । ३१ ॥

जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान संज्ञा और वेद विषय में रात्रि शब्द से ङीप् प्रत्यय हो । या रात्री सृष्टा । रात्रीभिः । जस् में निषेध इस लिये है कि । यास्ता रात्रयः । यहां ङीप् न होवे ॥ ५५ ॥

वा०—अजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥ ५६ ॥

केवल जस् के परे जो ङीप् का निषेध किया है सो जस् आदि के परे निषेध करना चाहिये । जैसे । रात्रिं सहोषित्वा । इत्यादि में भी ङीप् न होवे ॥ ५६ ॥

---

* यहां अवन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से पक्ष में (डाबुभाभ्या०) इस अन्य सूत्र से डाप् प्रत्यय विकल्प कर के हो जाता है । इन दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग हो जाते हैं ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ५७ । अ० । ४ । १ । ३२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगों में अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् और नुक् का आगम भी होजाय । ५७ ॥

का०-अन्तर्वत्पतिवतोस्तु मतुब्वत्वे निपातनात् ॥
गर्भिण्यां जीवपत्यां च वा छन्दसि तु नुग्भवेत् ॥ ५८ ॥

अन्तर्वत् शब्द में मतुप् और पतिवत् शब्द में मतुप् के मकार को वकारादेश निपातन किया है । तथा अन्तर्वत् शब्द से गर्भिणी अर्थ में और पतिवत् शब्द से जिस का पति जीता हो वहां वैदिक प्रयोग विषय में विकल्प करके नुक् और ङीप् नित्य ही होवे जैसे । सान्तर्वत्नी देवानुपैत् । सान्तर्वती देवानुपैत् । पतिवत्नी तरुणवत्सा । पतिवती तरुणवत्सा ॥ ५८ ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ५९ ॥ अ० । ४ । १ । ३३ ॥

जो यज्ञ का संयोग हो तो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पति शब्द को नकारादेश और ङीप् प्रत्यय हो । यजमानस्य पत्नी । पत्नि वाचं यच्छ । यहां यज्ञसंयोग इस लिये कहा है कि । ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी । यहां न हो ॥ ५९ ॥

विभाषा * सपूर्वस्य ॥ ६० ॥ अ० । ४ । १ । ३४ ॥

जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पूर्वपद सहित पति शब्द हो तो उस को नकारादेश विकल्प करके हो ङीप् तो नकारान्त के होने से सिद्ध ही है । दृढपतिः । दृढपत्नी । स्थूलपतिः । स्थूलपत्नी । जीवपतिः । जीवपत्नी । यहां सपूर्व ग्रहण इस लिये है कि । पतिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य । यहां ङीप् न हुआ ॥ ६० ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ६१ ॥ अ० ४ । १ । ३५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान सपत्नी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निपातन किया है । समानः पतिरस्याः सा सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

पूतक्रतोरै च ॥ ६२ ॥ अ० । ४ । १ । ३६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पूतक्रतु शब्द से ङीप् और उस को ऐकारादेश भी होवे । जैसे । पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी । यहां से लेके तीन सूत्रों में जो प्रत्यय वि

* यह स्पष्ट विभाषा इसलिये समझनी चाहिये कि [illegible]
[illegible]

धान है सो पुंयोग अर्थात् उस स्त्री के साथ पुरुषसंबन्ध की विवक्षा हो तो होवें। जैसे। यथा हि पूता: क्रतव: पूतक्रतु: सा भवति। यहां पुंयोग की विवक्षा नहीं इस से ङीप् न हुआ ॥ ६२ ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥ ६३ अ० । ४ । १ । ३७॥

स्त्रीलिंग और पुरुष के योग में वृषाकपि। अग्नि। कुसित। और कुसीद। शब्दों को ऐकारादेश और इन से ङीप् प्रत्यय भी हो। और वह ङीप् प्रत्यय उदात्त भी होवे। जैसे। वृषाकपे: स्त्री वृषाकपायी। अग्ने: स्त्री। अग्नायी। कुसितस्य स्त्री। कुसितायी। कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी। यहां पुंयोग इस लिये है कि। वृषाकपि: स्त्री। इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३ ॥

मनोरौ वा * ॥ ६४ ॥ अ०४ । १ ॥ ३८ ॥

पुंयोग में और स्त्रीलिंग में वर्तमान मनु प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे और मनु शब्द को औकार और पक्ष में ऐकारादेश हो और वह उदात्त भी हो जावे जैसे। मनो: स्त्री मनायी। मनावी। मनु:। ये तीन प्रयोग होते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ६५ ॥ अ०४ । १ । ३९ ॥

जो स्त्रीलिंग में वर्तमान वर्णवाची अनुदात्त तकारोपध प्रातिपदिक हैं उन से विकल्प करके ङीप् और उन के तकार को नकारादेश भी होवे जैसे। एता। एनी। श्येता। श्येनी। हरिता। हरिणी। यहां। वर्णवाची से इस लिये कहा है कि। प्रहृता। यहां ङीप् और नकार न होवें। अनुदात्त इस लिये है कि। श्वेता। यहां न हो। तोपध इस लिये है कि। अन्य प्रातिपदिक से ङीप् न हो अदन्त की अनुवृत्ति इस लिये आती है कि। शितिर्ब्राह्मणी। यहां न हो ॥६५॥

वा०-पिशङ्गादुपसंख्यानम् ॥ ६६ ॥

पिशंग शब्द तोपध नहीं है इस कारण ङीप् नहीं पाता था इस लिये इसका उपसंख्यान है। पिशंग शब्द से भी स्त्रीलिंग में ङीप् होवे जैसे। पिशंगी ॥६६॥

वा०-असितपलितयोः प्रतिषेधः ॥ ६७ ॥

असित और पलित प्रातिपदिकों से ङीप् और इन के तकार को नकारादेश न होवे। सूत्र से पाया था उस का निषेध रूप यह अपवाद है जैसे। असिता। पलिता ॥ ६७ ॥

* यह मनोरौ विभाषा इस प्रकार है कि जो वार्त्तिक इस सूत्र से जो हैं वे किसी के पास नहीं।

वा०--छन्दसि क्नमेके ॥ ६८ ॥

पलित और पलित शब्द के तकार के स्थान में क्नम् आदेश और ङी

त्यय हो ऐसो इच्छा कोई आचार्य करते हैं जैसे। असिक्नी। पलिक्नी ॥

अन्यतो ङीष् ॥ ६९ ॥ अ० ४ । १ । ४० ॥

अन्य नाम तोपध से भिन्न अनुदात्त वर्णवाची अदन्त प्रातिपदिकों से

लिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो जैसे। सारङ्गी। कल्माषी। शबली। इत्यादि। अ

अनुदात्त ग्रहण इस लिये है कि। कृष्णा। कपिला। इत्यादि से न हो ॥ ६९

षिद्‌गौरादिभ्यश्च ॥ ७० ॥ अ० ४ । १ । ४१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान षकारान्त षित् और गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष्

प्रत्यय होवे। नर्तकी। खनकी। रजकी। गौरी। मत्सी। शृङ्गी। इत्यादि ॥ ७० ॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद्‌-

वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविका-

रमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥ ७१ ॥ अ० । ४ । १ । ४२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अकारान्त जानपद आदि ११ ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि

ग्यारह ११ अर्थों में यथासंख्य कर के ङीष् प्रत्यय होवे जानपदी वृत्तिः। जान-

पदी रीतिः। यहां ङीष् होने से स्वर में भेद हो जाता है। कुण्डी। अमत्रपात्रम्।

अन्यत्र कुण्डा। गोणी। आवपन अर्थात् नाप हो तो अन्यत्र। गोणा। स्थली।

अकृत्रिमा भूमिः। अन्यत्र स्थला। भाजी। श्राणा। पकाने के योग्य शाक अन्यत्र।

भाजा। नागी स्थौल्यम्। अति मोटी हो तो। अन्यत्र नागा। काली जो वर्ण

ी। अन्यत्र काला। नीली जो वस्त्र हो नहीं तो नीला शाटी। कुशी जो लोहे

कुछ विकार हो नहीं तो कुशा। कामुकी जो मैथुन की इच्छा रखती हो नहीं

कामुका। कबरी जो बालों का सम्हालना हो तो नहीं तो कबरा ॥ ७१ ॥

वा०--नीलादोषधौ ॥ ७२ ॥

नील शब्द से ओषधि अर्थ में भी ङीष् प्रत्यय हो। जैसे। नीली ओषधिः ॥ ७२ ॥

वा०--प्राणिनि च ॥ ७३ ॥

णी अर्थ में भी नील शब्द से ङीष् प्रत्यय होवे जैसे नीली गौः। नीली वड-

ली गवयी। इत्यादि ॥ ७३ ॥

वा०–या संज्ञायाम् ॥ ७४ ॥

संज्ञा अर्थ में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। मीनो। मीना। इत्यादि। ७४।

योगात्प्राचाम् ॥ ७५ ॥ अ० । ४ । १ । ४२ ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान योग प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे अन्य आचार्यों के मत में नहीं। योगी योगा बड़वा ॥ ७५ ॥

वोतो गुणवचनात् ॥ ७६ अ० । ४ । १ । ४४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गुणवचनवाची उकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके हो जावे। पट्वी। पटुः। मृद्वी। मृदुः। इत्यादि। उत् ग्रहण इस लिये है कि शुचिः। यहां ङीप् न हो। गुणवचन ग्रहण इस लिये है कि। आखुः। यहां न हो ॥ ७६ ॥

वा०–गुणवचनान्ङीबाद्युदात्तार्थम् ॥ ७७ ॥

गुणवचन वाची प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये क्योंकि ङीप् के होने से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है। सो आद्युदात्त होवे जैसे वक्री। तन्वी। इत्यादि यह विधान सर्वत्र नहीं किन्तु जहां आद्युदात्त प्रयोग आवें ॥ ७७ ॥

वा०–खरुसंयोगोपधान्नां प्रतिषेधः ॥ ७८ ॥

खरु और संयोग जिस की उपधा में हो ऐसे गुणवचन वाची उकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। खरुरियं ब्राह्मणी। पाण्डुरियं ब्राह्मणी इत्यादि ॥ ७८ ॥

बह्वादिभ्यश्च ॥ ७९ । अ० । ४ । १ । ४५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके हो। बह्वी। बहुः। पद्धती। पद्धतिः। अङ्गती। अङ्गतिः। इत्यादि ॥ ७९ ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ८० ॥ अ० । ४ । १ । ४६ ॥

वेदों में बहु आदि शब्दों से ङीप् प्रत्यय नित्यही हो। बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् बह्वीनाम सोमधी भवति ॥ ८० ॥

भुवश्च ॥ ८१ । अ० । ४ । १ । ४७ ॥

वेदों में भू प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। विभ्वीच। प्रभ्वीच। सुभ्वीच। इत्यादि ॥ ८१ ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ८२ ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः । स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पुरुष के योग के कहने में प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो जैसे । गणकस्य स्त्री गणकी । महामात्री । प्रष्ठी । प्रचरी । इत्यादि । यहां पुंयोग ग्रहण इस लिये है कि । देवदत्ता । यहां ङीष् न हो ॥८२॥

वा०-गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥ ८३ ॥

पुंयोग के कथन में गोपालिका आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय न हो जैसे । गोपालकस्य स्त्री गोपालिका । पशुपालिका । इत्यादि ॥ ८३ ॥

वा०-सूर्य्याद्देवतायां चाब्वक्तव्यः ॥ ८४ ॥

सूर्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय हो जैसे । सूर्यस्य स्त्री सूर्या । यहां देवता ग्रहण इस लिये है कि । सूरी । यहां न हो ॥ ८४ ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाऽऽचार्य्याणामानुक् ॥ ८५ ॥ अ० ४ । १ । ४९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान इन्द्रादि बारह १२ प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और इन्द्र आदि शब्दों को आनुक् का आगम भी हो जैसे । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी * ॥ ८५ ॥

वा०-हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥ ८६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्तमान हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से स्वार्थ में महत्त्व अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो जैसे । महद्धिमं हिमानी । महदरण्यमरण्यानी ॥ ८६ ॥

वा०-यवाद्दोषे ॥ ८७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यव प्रातिपदिक से स्वार्थ में दुष्टता अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो जैसे । दुष्टो यवो यवानी ॥ ८७ ॥

वा०-यवनाल्लिप्याम् ॥ ८८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवे जैसे । यवनानी लिपिः ॥ ८८ ॥

* यहां इन्द्रादि शब्दों से पुंयोग में ङीष् प्रत्यय तो पूर्व सूत्र से प्राप्त ही है केवल आनुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है । सो सूत्र से सामान्य अर्थ में कार्य विधान है इसी लिये हिम आदि क. शब्दों से विशेष अर्थों में वार्तिकों से विधान किया है ।

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां वा * ॥ ८९ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान उपाध्याय और मातुल प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवे जैसे । उपाध्यायानी । उपाध्यायी । मातुलानी । मातुली ॥ ८९ ॥

वा०—आचार्य्यादणत्वं च ॥ ९० ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है । स्त्रिलिंग में वर्त्तमान आचार्य्य प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम भी विकल्प करके होवे । और आनुक् के नकार को णत्व प्राप्त है सो न हो । जैसे । आचार्य्यानी । आचार्य्या । यहां पक्ष में टाप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९० ॥

वा—अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा † ॥ ९१ ॥

यहां फिर विकल्प ग्रहण इस लिये है कि णत्व की अनुवृत्ति न आवे । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अर्य्य और क्षत्रिय प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवें । जैसे । अर्य्याणी । अर्य्या । क्षत्रियाणी क्षत्रिया ॥९१॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥ ९२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मुद्गल प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो । और ङीष् प्रत्यय लित् भी हो जावे जैसे । रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ ॥ ८२ ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥ ९३ ॥ अ० ४ । १ । ५० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान करण कारक वाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो जैसे । वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती । वसनक्रीती । रथक्रीती इत्यादि यहां करण कारक का ग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तक्रीता । इत्यादि से ङीष् न हो ॥ ९३ ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ९४ ॥ अ० ४ । १ । ५१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अल्पाख्या अर्थ में करण कारक जिस से पूर्व हो ऐसे क्तान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो । अभ्रविलिप्ती द्यौः । सूपविलिप्ती स्थाली । इत्यादि । यहां अल्पाख्या ग्रहण इस लिये है कि । चन्दनानुलिप्ता ब्राह्मणी । इत्यादि से ङीष् न होवे ॥ ९४ ॥

* इस वार्त्तिक में उपाध्याय शब्द से अपूर्व विधान और मातुल शब्द तो सूत्र में पढ़ा ही है ।

† यहां से आगे दोनों वार्त्तिक अपूर्व विधायक इस लिये हैं कि अर्य्यादि शब्द सूत्र में नहीं पढ़े हैं ।

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ९५ ॥ अ० ४ । १ । ५२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त क्तान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो जैसे । शंखं भिन्नं यया सा शंखभिन्नी । ऊरुभिन्नी । गलोत्कृत्ती । केशलूनी इत्यादि । यहां बहुव्रीहि ग्रहण इस लिये है कि । पद्भ्यां पतिता । पादपतिता । यहां ङीष् प्रत्यय न होवे ॥ ९५ ॥

वा०–अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेधः ॥ ९६ ॥

अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से जो ङीष् कहा है सो जात शब्द जिन के अन्त में उन प्रातिपदिकों से न हो । यह वार्त्तिक सूत्र का निषेध रूप अपवाद है जैसे । दन्तजाता । स्तनजाता । इत्यादि ॥ ९६ ॥

वा०–पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥ ९७ ॥

विशेष अर्थात् जहां वेदोक्त रीति से पाणिग्रहण अर्थात् विवाह किया जावे वहां पाणिगृहीती आदि शब्दों में ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे । पाणिगृहीती भार्य्या । और जहां किसी प्रकार पाणिग्रहण कर लेवे वहां । पाणिगृहीता । टाबन्त ही प्रयोग होवे ॥ ९७ ॥

वा०–अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥ ९८ ॥

सूत्र में जो अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से ङीष् कहा है सो जो बहु नञ् सु काल और सुखादि शब्द पूर्व हों तो न होवे जैसे । बहु । बहुकृता । नञ् । अकृता । सु । सुकृता । काल । मासजाता । संवत्सरजाता । सुखादि । सुखजाता । दुःखजाता । इत्यादि ॥ ९८ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ९९ । अ० । ४ । १ । ५३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान स्वाङ्ग पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि समास युक्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे जैसे । शार्ङ्गजग्धी । शार्ङ्गजग्धा । पलाण्डुभक्षितौ । पलाण्डुभक्षिता । सुरापीती । सुरापीता । यहां अस्वाङ्ग पूर्वपद इस लिये है कि । दन्तभिन्नी । यहां विकल्प न हो । और अन्तोदात्त इस लिये है कि वस्त्रछन्ना । यहां ङीष् न हो ॥ ९९ ॥

वा०–बहुलं संज्ञाछन्दसोः ॥ १०० ॥

संज्ञा और वैदिक प्रयोग विषय में वर्त्तमान क्त प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से बहुल करके ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे । प्रवहविलूनी । प्रवहविलूना । प्रवहा पाशी विलूना

चेति नायं बहुव्रीहिः । यहां बहुव्रीहि समास नहीं किन्तु कर्मधारय है । १०...

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ १०१ ॥ अ० ४ । १ । ५४ ...

यहां बहुव्रीहि अन्तोदात्त क्रान्त ये तीन पद तो छूट गये परन्तु एक वि... की अनुवृत्ति चली आती है । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जिस के स्वांगवाची उपस... संयोगोपध से भिन्न प्रातिपदिक अन्त में हो उन से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो... जैसे । चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा । अतिक्रान्ता केशानतिकेशी । अतिकेशा माला... यहां स्वांग ग्रहण इस लिये है कि । बहुयवा * उपसर्जन इस लिये है कि । ... शिखा । और असंयोगोपध ग्रहण इस लिये है कि । सुगुल्फा । सुपार्श्वा । यहां ङीष् न हुआ ॥ १०१ ॥

वा०—अङ्गगात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ १०२ ॥

पूर्व सूत्र से संयोगोपध के निषेध से अङ्ग आदि का निषेध प्राप्त है उस का अपवाद विधायक यह वार्तिक है । स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जो स्वांगवाची उप... सर्जन अङ्ग गात्र और कण्ठ प्रातिपदिक हैं उन से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे । मृद्वङ्गी । मृद्वङ्गा । सुगात्री । सुगात्रा । स्निग्धकण्ठी । स्निग्धकण्ठा । इत्यादि ॥ १०२ ॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च † ॥ १०३ ॥

अ० । ४ । १ । ५५ ॥

विकल्प की अनुवृत्ति यहां भी चली आती है स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में जिस के अन्त में स्वाङ्ग संज्ञक उपसर्जन अर्थात् अप्रधानार्थवाची नासिका । उदर । ओष्ठ । जङ्घा । दन्त । कर्ण और शृङ्ग शब्द हों उस प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे । तुङ्गनासिकी । तुङ्गनासिका । कृशोदरी । बिम्बोष्ठी । बिम्बोष्ठा । दीर्घजङ्घी । दीर्घजङ्घा । समदन्ती । समदन्ता । चारुकर्णी । चारुकर्णा । तीक्ष्णशृङ्गी । तीक्ष्णशृङ्गा इत्यादि ॥ १०३ ॥

---

* [illegible]

† [illegible]

वा०-पुच्छाच्च ॥ १०४ ॥

पुच्छ शब्द भी संयोगोपध स्वाङ्गवाची है इस कारण निषेध का बाधक यह वार्त्तिक है। पुच्छान्त स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे। कल्याणपुच्छी। कल्याणपुच्छा ॥ १०४ ॥

वा०-कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥ १०५ ॥

कबर मणि विष और शर शब्दों से परे जो स्वाङ्गवाची पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो जैसे। कबरपुच्छी। मणिपुच्छी। विषपुच्छी। शरपुच्छी। इत्यादि ॥ १०५ ॥

वा०-उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥ १०६ ॥

उपमानवाची शब्दों से परे जो स्वाङ्गवाची पक्ष और पुच्छ प्रातिपदिक उन से नित्य ही ङीष् प्रत्यय हो। जैसे। उलूकपक्षी सेना। उलूकपुच्छी शाला इत्यादि ॥ १०६ ॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥ १०७ ॥ अ० । ४ । १ । ५६ ॥

क्रोड आदि प्रातिपदिक और बहुत अच् जिन में हों उन प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय न होवे जैसे। कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। कल्याणबाला। कल्याणशफा। बह्वच्। पृथुजघना। महाललाटा। इत्यादि ॥ १०७ ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ १०८ ॥ अ० । ४ । १ । ५७ ॥

सह नञ् विद्यमान ये हों पूर्व जिस के उस स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो जैसे। सकेशा। अकेशा। विद्यमानकेशा। सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका। इत्यादि ॥ १०८ ॥

नखमुखात्संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥ अ० । ४ । १ । ५८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान नखान्त और मुखान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय न हो जैसे। शूर्पणखा। वज्रणखा। गौरमुखा। कालमुखा। संज्ञाग्रहण इस लिये है कि। ताम्रमुखी कन्या। यहां ङीष् हो ही गया ॥ १०९ ॥

दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥ ११० ॥ अ० ४ । १ । ५९ ॥

वेदों में दीर्घजिह्वी निपातन किया है। दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमवेट्। दीर्घजिह्वी शब्द नित्य ङीष् होने के लिये निपातन किया है ॥ ११० ॥

दिक्पूर्वपदान्ङीप् ॥ १११ ॥ अ० । ४ । १ । ६० ॥

दिक् पूर्वपद हो जिस के उस स्वांगवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । प्राङ्मुखी । प्रत्यङ्मुखी । प्राङ्नासिकी । इत्यादि ॥१११॥

वाहः ॥ ११२ ॥ अ० । ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे । दित्यौही । प्रष्ठौही । विश्वौही इत्यादि ॥ ११२ ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ११३ ॥ अ० । ४ । १ । ६२ ॥

भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में सखी और अशिश्वी । ये दोनों ङीष् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं जैसे । सखीयं मे ब्राह्मणी । नास्याः शिशुरस्तीति । अशिश्वी । यहां भाषा ग्रहण इस लिये है कि । सखा सप्तपदी भव । यहां न हो ॥११३॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ११४ । अ० । ४ । १ । ६३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो यकारोपध वर्जित जातिवाची अकारान्त और नियत स्त्रीलिंग न हो ऐसे प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे । कुक्कुटी । सूकरी । ब्राह्मणी । हयमी । नाडायनी । चारायणी । वृषली । यहां जाति ग्रहण इस लिये है कि । मुण्डा । अस्त्रीविषय इस लिये है कि । मक्षिका । अयोपध इस लिये है कि । क्षत्रिया । वैश्या । अनुपसर्जन ग्रहण इस लिये है कि । बहुकुक्कुटा । बहुसूकरा । इन से ङीष् न हुआ ॥ ११४ ॥

वा०-योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः ॥ ११५ ॥

यकारोपध का निषेध जो सूत्र से किया है वहां हय गवय मुकय मत्स्य और मनुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होवे । अर्थात् इन से ङीष् प्रत्यय हो जावे । जैसे । हयी । गवयी । मुकयी । मत्सी । मनुषी ॥ ११५ ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ॥ ११६ । अ० ४ । १ । ६४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जिन प्रातिपदिकों के पाक आदि उत्तरपद हों उन से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे । ओदनपाकी । शङ्कुकर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली ॥ ११६ ॥

वा०–सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः ॥ ११७ ॥

सत् अच् काण्ड प्रान्त शत और एक प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुष्प प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो। सूत्र से सामान्य करके प्राप्त है उस का विशेष यहां से निषेध किया है। जैसे। सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। काण्डपुष्पा। प्रान्तपुष्पा। शतपुष्पा। एकपुष्पा ॥ ११७ ॥

वा०–संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ ११८ ॥

सम् भस्त्र अजिन शण और पिण्ड शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो। यहां सर्वत्र ङीष् का निषेध होने से टाप् हो जाता है जैसे। संफला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला ॥ ११८ ॥

वा०–श्वेताच्च ॥ ११९ ॥

श्वेत शब्द से परे जो फल उस से भी ङीष् न हो जैसे। श्वेतफला ॥ ११९ ॥

वा०–त्रेश्च ॥ १२० ॥

त्रिशब्द से परे जो फल उस से भी ङीष् न हो जैसे। त्रिफला ॥ १२० ॥

वा०–मूलान्नञः ॥ १२१ ॥

नञ् से परे जो मूल प्रातिपदिक उस से भी ङीष् प्रत्यय न होवे जैसे। अमूलम् अस्याः सा अमूला। इत्यादि ॥ १२१ ॥

इतो मनुष्यजातेः ॥ १२२ ॥ ४ । १ । ६५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय हो जैसे। अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी इत्यादि। यहां इकारान्त ग्रहण इस लिये कि। विट्। दरत्। यहां ङीष् न होवे मनुष्य ग्रहण इस लिये है कि। तित्तिरिः। यहां न हो और पूर्वसूत्र से जाति की अनुवृत्ति चली आती फिर जाति ग्रहण का प्रयोजन यह है कि यकारोपध से भी ङीष् प्रत्यय हो जावे। जैसे। औदमेयी। इत्यादि ॥ १२२ ॥

वा०–इञउपसंख्यानमजात्यर्थम् ॥ १२३ ॥

जाति के न होने से स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये जैसे। सौतङ्गमी। मौनचित्ती * इत्यादि ॥ १२३ ॥

* सुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक प्रकरण का इञ् प्रत्यय है इस कारण जाति नहीं ॥

मत्तणोक: । वामोक: । यहां उपमान अर्थ नहीं है इस लिये इस सूत्र का पृथक् प्रारम्भ है नहीं तो पूर्व सूत्र से ही हो जाता ॥ १३० ॥

वा०-सहितसहाभ्यां च ॥ १३१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान सहित और सह शब्द से परे जो ऊरु प्रातिपदिक उस से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । सहितोरू: । सहोरू: । इत्यादि ॥ १३१ ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ १३२ ॥ अ० ४ । १ । ७१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे। कद्रूश्च वै सुपर्णी च । मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् । यहां छन्दो ग्रहण इस लिये है कि । कद्रुः । कमण्डलुः । यहां न हो ॥ १३२ ॥

वा०-गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामुपसंख्यानम् ॥ १३३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोग विषय में गुग्गुलु मधु जतु और पतयालु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः ॥१३३॥

संज्ञायाम् ॥ १३४ ॥ अ० ४ । १ । ७२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान संज्ञा विषय में कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । कद्रूः । कमण्डलूः । यहां संज्ञा इस लिये है कि । कद्रुः । कमण्डलुः । यहां ऊङ् न होवे ॥ १३४ ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ १३५ ॥ अ० ४ । १ । ७३ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जाति अर्थ में शार्ङ्गरव आदि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीन् प्रत्यय होवे जैसे । शार्ङ्गरवी । कापटवी । अञन्त । बैदी । और्वी । यहां जाति की अनुवृत्ति आने से पुंयोग में प्राप्त ङीष् का बाधक यह सूत्र नहीं होता जैसे । बैदस्य स्त्री बैदी । यहां ङीष् होता ही है ॥ १३५ ॥

यङश्चाप् ॥ १३६ ॥ अ० ४ । १ । ७४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से चाप् प्रत्यय होवे जैसे । आम्बष्ठ्या । सौवीर्या । कारीषगन्ध्या । वाराह्या । इत्यादि ॥ १३६ ॥

वा०-षाद्यञः ॥ १३७ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो षकार से परे यञ् तदन्त प्रातिपदिकों से चाप् प्रत्यय होवे जैसे । शार्कराक्ष्या । पौतिमाष्या । गौकक्ष्या । इत्यादि ॥ १३७ ॥

गोत्रावयवात् ॥ १४२ ॥ अ० । ४ । १ । ७६ ॥

इस सूत्र का आरम्भ गुरुपोत्तम विशेषण न लगने के लिये है । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र का अवयव अर्थात् गोत्राभिमत कुल में मुख्य । पुणिक । भुणिक । और मुखर आदि प्रातिपदिकों से विहित जो गोत्र अर्थ में अण् और इञ् हैं उनके स्थान में ष्यङ् आदेश हो वह तद्धित सञ्ज्ञक भी होवे जैसे । पौणिक्या । भौणिक्या । मौखर्या । इत्यादि ॥ १४२ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ अ० ४ । १ । ८० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से ष्यङ् प्रत्यय और उस को तद्धित सञ्ज्ञा भी हो जावे जैसे । क्रौड्या । लाड्या । व्याड्या । इत्यादि ॥ १४३ ॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ १४४ ॥ अ० ४ । १ । ८१ ॥

स्त्रीलिंग और गोत्र अर्थ में वर्त्तमान दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से ष्यङ् प्रत्यय होवे उस को तद्धित सञ्ज्ञा भी हो जैसे । दैवयज्ञ्या । शौचिवृक्ष्या । सात्यमुग्र्या । काण्ठेविद्ध्या । और पक्ष में (इतो मनुष्यजातेः) इस उक्त सूत्र से ङीष् होता है जैसे । दैवयज्ञी । शौचिवृक्षी । सात्यमुग्री । काण्ठेविद्धी । इत्यादि ॥ १४४ ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ १४५ ॥ अ० ४ । १ । ८२ ॥

तीन पदों का अधिकार करते हैं । एक समर्थानाम् । दूसरा प्रथमात् । तीसरा वा । इस से आगे जो २ प्रत्यय कहे हैं वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होवें पक्ष में वाक्य भी बनारहै सो यह अधिकार छः पाद अर्थात् पंचमाध्याय के द्वितीय पाद के अन्त पर्य्यन्त चला जावेगा जैसे । उपगोरपत्यम् । औपगवः । यहां समर्थानाम् इस लिये है कि । कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य । यहां देवदत्त शब्द से नहीं हो जावे । प्रथमात् इस लिये है कि । षष्ठ्यन्त हो से होवे प्रथमान्त से नहीं हो जैसे । उपगु से होता है अपत्य से नहीं हो । वा इसलिये है कि वाक्य भी बनारहै जैसे । उपगोरपत्यम् ॥ १४५ ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ १४६ ॥ अ० ४ । १ । ८३ ॥

(तेनदीव्यति०) इस सूत्र पर्य्यन्त अण् प्रत्यय का अधिकार करते हैं । यहां से आगे जो २ विधान करेंगे वहां २ अपवाद विषयों को छोड़ के अण् हो प्रवृत्त

वा०-बहिषष्टिलोपश्च ॥ १५३ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे जैसे । बहिर्भवो बाह्यः ॥ १५३ ॥

वा०-ईकक् च ॥ १५४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकक् प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे जैसे । बाहीकः ॥ १५४ ॥

वा०-ईकञ् छन्दसि ॥ १५५ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोग विषयक बहिष् प्रातिपदिक से ईकञ् प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे जैसे । बाहीकः[१] ॥ १५५ ॥

वा०-स्थाम्नोऽकारः ॥ १५६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिकों से अकार प्रत्यय होवे जैसे । अश्वत्थामः ॥ १५६ ॥

वा०-लोम्नोऽपत्येषु बहुषु ॥ १५७ ॥

बहुत अपत्य वाच्य हों तो लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिकों से अकार प्रत्यय हो जावे जैसे । उडुलोम्नोऽपत्यानि । उडुलोमाः । शारलोमाः । इत्यादि । यहां बहुत अपत्य ग्रहण इस लिये है कि । उडुलोम्नोऽपत्यम् । औडुलोमिः । शारलोमिः । यहां अकार प्रत्यय न होवे ॥ १५७ ॥

वा०-सर्वत्र गोरजादिप्रसंगे यत् ॥ १५८ ॥

सर्वत्र अर्थात् प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अण् आदि अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में यत् प्रत्यय हो होवे जैसे । गव्यम् । यहां अजादिप्रसङ्ग इस लिये कहा है कि । गोरूप्यम् । गोमयम् । इत्यादि में यत् न होवे ॥ १५८ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ १५९ अ० ४ । १ । ८६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में जो उत्स आदि प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होवे । जैसे । औत्सः । औदपानः । वैकरः । इत्यादि अण् और उस के अपवादों का भी यह सूत्र अपवाद है ॥ १५९ ॥

---

१ पूर्ववार्त्तिक से ईकक और यहां ईकञ् इन दो प्रत्ययों में केवल स्वर का ही भेद है अर्थात् लोक में अन्तोदात्त और वेद में आद्युदात्त स्वर होता है ।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ १६० ॥ अ० ४ । १ । ८७ ॥

(धान्यानां भवने०) इस सूत्र से पूर्व २ सब अर्थों में स्त्री और पुंस प्रातिपदिकों से यथासंख्य कर के नञ् और स्नञ् प्रत्यय हो। जैसे। स्त्रीषु भवम्। स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रीभ्य आगतम्। स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रिया ग्रीष्मम्। स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रीभ्यो हितम्। स्त्रैणम्। पौंस्नम्। इत्यादि ॥ १६० ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ १६१ । अ० ४ । १ । ८८ ॥

द्विगु का संबन्धी निमित्त अर्थात् जिस को मान के द्विगु किया हो उस अपत्य वर्जित प्राग्दीव्यतीय तद्धित सञ्ज्ञक प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः। पंचकपालः। दशकपालः। द्वौ वेदावधीते। द्विवेदः। त्रिवेदः इत्यादि। यहां अनपत्य ग्रहण इस लिये है कि। द्वैमातुरः। पाञ्चनापितिः। इत्यादि में लुक् न हो ॥ १६१ ॥

गोत्रेऽलुगचि ॥ १६२ । अ० ४ । १ । ८९ ॥

जो (यस्कादिभ्यो गोत्रे) इत्यादि सूत्रों से जिन गोत्र प्रत्ययों का लुक् कह चुके है सो न हो। परन्तु जो प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय परे हों तो जैसे। गर्गाणां छात्राः। गार्गीयाः। वात्सीयाः। आत्रेयाः। खारपायणीयाः। यहां गोत्र इस लिये है कि। कौवलम्। बादरम्। यहां निषेध न हो। और अच् ग्रहण इस लिये है कि। गर्गेभ्य आगतम्। गर्गरूप्यम्। गर्गमयम्। यहां हलादि प्रत्ययों के परे लुक् हो जावे ॥ १६२ ॥

यूनि लुक् ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ९० ॥

जब प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे तब जो युवापत्य अर्थ में विहित तद्धित सञ्ज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो फिर जिस प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे जैसे। फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्य युवापत्यं। यहां (फाण्टाहृतिमिम०) इस से युवापत्य में ण होकर फाण्टाहृतः। फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः। इस अर्थ की विवक्षा होने से युवापत्य के ण प्रत्यय का लुक् हो के उस इञ् प्रत्ययान्त फाण्टाहृति प्रातिपदिक से (इञश्च) इस सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय हो जाता है जैसे। फाण्टाहृताः। तथा। भगवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः। यहां प्रथम गोत्र में इञ्। तस्य भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः। यहां युवापत्य में ठक् हुआ है। भागवित्तिकस्य यूनश्छात्राः। इस अर्थ की अपेक्षा में यहां भी पूर्व के

समास युव प्रत्यय टक् को निवृत्ति हो कर इञन्त से अण् हो जाता है । जैसे । भागवित्ता: । तैकायनेरपत्यं माणवक: । तैकायनीय: । तैकायनीयस्य छात्रा: । तैकायनीया: । यहां युव प्रत्यय छ की निवृत्ति में फिञ प्रत्ययान्त तैकायनि शब्द प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हुआ है । इत्यादि यहां अजादि के परे लोप इस लिये कहा है कि फाण्टाहृतस्यापत्यम् । फाण्टाहृतमयम् । यहां लुक् न हो प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ही लोप होता है अन्यत्र नहीं । भागवित्तिकाय हितम् । भागवित्तिकीयम् । यहां न हो ॥ १६३ ॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम् ॥ १६४ ॥ अ० ४ । १ । ९१ ॥

जो प्राग्दीव्यतीय अर्थवाची अजादि प्रत्यय परे हों तो फक् और फिञ् युवप्रत्ययों का लुक् विकल्प करके होवे जैसे । गर्गस्यापत्यं गार्ग्य: । गर्ग शब्द से यञ् । तस्य युवापत्यम् । तदन्त से फक् । गार्ग्यायण: । तस्य छात्रा: । इस विवक्षा में फक का लुक् । गार्गीया: । और जिस पक्ष में लुक् न हुआ । वहां । गार्ग्यायणीया: । वात्सीया: । वात्स्यायनीया: । इत्यादि । फिञ् । यस्कस्यापत्यम् । शिवादिकों से अण् । यास्क: । तस्य युवापत्यम् । अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ् । यास्कायनिस्तस्य छात्रा: । इस विवक्षा में फिञ् का विकल्प से लुक् । यास्कीया: । यास्कायनीया: । इत्यादि ॥ १६४ ॥

तस्याऽपत्यम् ॥ १६५ ॥ अ० ४ । १ । ९२ ॥

जो समर्थों के मध्य में प्रथम षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक होवे उस से अपत्य अर्थ में अण् आदि प्रत्यय विकल्प करके होवें जैसे । उपगोरपत्यम् । औपगव: । आश्वपत: । दैत्य: । औत्स: । स्त्रैण: । पौंस्न: । इत्यादि ॥ १६५ ॥

ओर्गुण: ॥ १६६ ॥ अ० ६ । ४ । १४६ ॥

जो तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हो तो उवर्णान्त भसंज्ञक अंग को गुण हो जैसे । उपगोरपत्यम् । औपगव: । इत्यादि ॥ १६६ ॥

तद्धितेष्वचामादे: ॥ १६७ ॥ अ० ७ । २ । ११७ ॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हों तो अचों के बीच में जो आदि अच् उस के स्थान में वृद्धि हो । जैसे औपगव: । बाभ्रव्य: । माण्डव्य: । इत्यादि ॥ १६७ ॥

यस्येति च ॥ १६८ ॥ अ० ६ । ४ । १४८ ॥

जो तद्धित संज्ञक प्रत्यय और ईकार परे हो तो इवर्ण और अवर्ण का लोप होवे जैसे । ईकार । दाक्षी प्लाक्षी । तद्धित में इवर्ण का लोप । वालेयः । आत्रेयः । इत्यादि । अवर्ण का लोप । कुमारी । किशोरी । पाण्डवः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंस्नः । इत्यादि ॥ १६८ ॥

एको गोत्रे ॥ १६९ ॥ अ० ४ । १ । ९३ ॥

गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय होवे अर्थात् द्वितीय प्रत्यय न हो अथवा का नियम करना चाहिये कि जहां गोत्रापत्य की विवक्षा हो वहां एक ही म सुख्य जिस से अपत्याधिकार में कोई प्रत्यय न हुआ हो उस से प्रत्यय उत्पत्ति होवे जैसे । गार्ग्यः । नाडायनः । इत्यादि ॥ १६९ ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥ १७० ॥ अ० ४ । १ । ९४ ॥

और जब युवापत्य की विवक्षा हो तब गोत्र प्रत्ययान्त प्रकृति ही से युवा प्रत्यय होवे । जैसे । गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः प्लाक्षायणः । यहां युवापत्य में फक् और । औपगविः । नाडायनिः । यहां युवा त्य में इञ् हुआ है । यहां स्त्री का निषेध इस लिये है कि । दाक्षी । प्लाक्षी । इत्या गोत्र प्रत्ययान्त से स्त्री प्रत्यय हुआ है ॥ १७० ॥

अत इञ् ॥ १७१ ॥ अ० ४ । १ । ९५ ॥

जो समर्थों का प्रथम षष्ठीसमर्थ अकारान्त प्रातिपदिक है उस से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प कर के होवे । जैसे । दक्षस्यापत्यं माणवको दाक्षिः । दाशरथिः । यह सूत्र अण् का अपवाद है । यहां तपर करण इस लिये है कि । शुभंया । कीलालपाः । इत्यादि से इञ् न हो अर्थात् आकारान्त से निषेध हो जाय ॥ १७१ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ॥ १७२ ॥ अ० ४ । १ । ९६ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठी समर्थ बाहु आदि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे । बाहविः । औपबाहविः । इत्यादि । १७२ ॥

सुधातुरकङ् च ॥ १७३ ॥ अ० ४ । १ । ९७ ॥

समर्थों का प्रथम षष्ठीसमर्थ सुधातृ प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय विकल्प करके और उस को अकङ् आदेश भी हो जैसे । सुधातुरपत्यं सौधातकिः ॥ १७३ ॥

वा०—व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥ १०४ ॥

व्यास वरुड निषाद चण्डाल और बिम्ब प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे जैसे। व्यासस्यापत्यं माणवको वैयासकिः। वारुडकिः। नैषादकिः। चाण्डालकिः। बैम्बकिः * इत्यादि ॥ १०४ ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् † ॥ १०५ ॥ अ० । ४ । १ । ९८ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में ‡ प्रथम प्रकृति कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो जैसे। कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः। कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनाः। ब्राध्नायन्यः। ब्राध्नायन्यौ। ब्राध्नायनाः। इत्यादि। यहां गोत्र ग्रहण इस लिये कहा है कि। कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः। यहां अनन्तरापत्य में च्फञ् नहीं। गोत्र का अधिकार (शिवादि०) इस सूत्र पर्य्यन्त जानना चाहिये ॥ १०५ ॥

नडादिभ्यः फक् ॥ १०६ ॥ अ० । ४ । १ । ९९ ॥

यह सूत्र भी इञ् का अपवाद है। नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होवे जैसे। नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः। चारायणः। इत्यादि यहां भी गोत्र की अनुवृत्ति आने से अनन्तरापत्य में। नाडिः। फक् नहीं होता किन्तु इञ् ही आता है ॥ १०६ ॥

हरितादिभ्योऽञः § ॥ १०७ ॥ अ० । ४ । १ । १०० ॥

यह भी सूत्र इञ् का ही अपवाद है और जो शब्द हरितादिकों में पढ़े हैं उन से अण् का अपवाद समझना चाहिये। जो बिदाद्यन्तर्गत हरितादि प्रातिपदिक हैं उन से युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय हो जैसे हरितस्य युवापत्यं हारितायनः। कैदासायनः। इत्यादि ॥ १०७ ॥

---

* इन व्यास आदि प्रातिपदिकों से [illegible] इञ् [illegible] अकङ् [illegible] किया गया है।

† यहां [illegible] प्रत्यय [illegible] है।

‡ [illegible] चाहिये [illegible] लिखें हैं।

§ इस सूत्र [illegible] होता।

ह सूत्र भी अण् आदि प्रत्ययों का ही अपवाद है। गोत्रापत्य अर्थ में गर्ग आदि प्राति-पदिकों से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। गार्ग्यः। वात्स्यः। वैयाघ्रपद्यः। इत्यादि ॥१८२॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः* ॥ १८३ ॥ अ० ।४ । १ । १०६ ॥

ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य अर्थ वाच्य हो तो मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। मधोर्गोत्रापत्यं माधव्यः। जो ब्राह्मण होवे नहीं तो। माधवः। बाभ्रव्यः। जो कौशिक होवे नहीं तो। बाभ्रवः। ॥ १८३ ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १८४ ॥ अ० । ४ । १ । १०७ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में कपि और बोध प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। कपेर्गोत्रापत्यम्। काप्यः। बौध्यः। जो अङ्गिरा का गोत्र होवे नहीं तो। कापेयः। बौधिः। यहां ढक् और इञ् प्रत्यय हो जाते हैं। और इन्हीं दोनों का यह अपवाद भी है। १८४ ॥

वतण्डाच्च ॥ १८५ ॥ अ० । ४ । १ । १०८ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्यविशेष अर्थ में वतण्ड प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। वतण्डस्य गोत्रापत्यम्। वातण्ड्यः। यहां भी जो अङ्गिरा का गोत्र होवे नहीं तो। वातण्डः। यहां अण् हो जाता है। और अण् का ही अपवाद यह सूत्र भी है ॥ १८५ ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १८६ ॥ अ० । ४ । १ । १०९ ॥

जहां आङ्गिरसी स्त्री वाच्य रहे वहां वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् होवे। जब लुक् हो जाता है तब शार्ङ्गरवादि गण में पढ़ने से ङीन् प्रत्यय हो जाता है जैसे। वतण्डी। जो अङ्गिरा के गोत्र की स्त्री होवे नहीं तो। वातण्ड्यायनी †। यहां ष्फ प्रत्यय हो जाता है ॥ १८६ ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ १८७ ॥ अ० । ४ । १ । ११० ॥

यह सूत्र अण् और इञ् का ही बाधक है। गोत्रापत्य अर्थ में अश्व आदि

* यह सूत्र अण् का अपवाद है। और बभ्रु शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है वहां पढ़ने से कौशिक में ष्फ प्रत्यय होजाता है जैसे। बाभ्रव्यायणी। और इस सूत्र में इस बभ्रु शब्द का पाठ नियमार्थ है कि कौशिक गोत्र में ही यञ् प्रत्यय हो अन्यत्र नहीं।

† यह वतण्ड शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है इस कारण इस से स्त्री लिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो कर यह प्रयोग होता है और वतण्ड शब्द शिवादि गण में भी पढ़ा है उस से स्त्रीलिङ्ग में। वातण्डी। यह प्रयोग होता है।

प्रातिपदिकों से फञ् प्रत्यय होवे जैसे। अश्वस्य गोत्रापत्यम्। आश्वायनः। श्मायनः। शाखायनः। इत्यादि ॥ १८७ ॥

भर्गात् त्रैगर्त्ते ॥ १८८ ॥ अ० । ४ । १ । १११ ॥

यह केवल इञ् का ही अपवाद है। भर्ग प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में फञ् प्रत्यय होवे जैसे। भर्गस्य गोत्रापत्यम्। भार्गायणः। जो त्रिगर्त्त गोत्र हो नहीं तो। भार्गिः। इञ् प्रत्यय हो जावे ॥ १८८ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ १८९ ॥ अ० । ४ । १ । ११२ ॥

यहां से गोत्र की निवृत्ति हो गई अब सामान्याऽपत्य में प्रत्यय विधान करेंगे यह सूत्र इञ् आदि का अपवाद यथायोग्य समझना चाहिये। अपत्य अर्थ में शिव आदि प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे। शिवस्य गोत्रापत्यम्। शैवः। प्रौष्ठः। प्रौष्ठिकः। * इत्यादि ॥ १८९ ॥

ऋष्यण्‌भ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥ १९० ॥ अ० । ४ । १ । ११३ ॥

यह सूत्र ढक् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्य अर्थ में वृद्ध संज्ञा रहित नदी और मानुषी के वाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे। यमुनाया अपत्यं यामुनः। इरावत्या अपत्यम्। ऐरावतः। वैतस्तः। नार्मदः। इत्यादि। यहां वृद्ध के निषेध इस लिये है कि। चान्द्रभागाया अपत्यम्। चान्द्रभागेयः। वासवदत्तेयः। इत्यादि में अण् न हुआ। नदी मानुषी इस लिये कहा है कि। सौपर्णेयः। वैनतेयः। यहां अण् न होवे। और तन्नामिका ग्रहण इस लिये है कि। शोभनाया अपत्यम्। शौभनेयः। यहां भी न हो ॥ १९० ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥ १९१ ॥ अ० । ४ । १ । ११४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में ऋषिवाची वसिष्ठ आदि तथा अन्धक वृष्णि और कुरु इन वंशवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे।

* तक्षन् शब्द शिवादिगण में पढ़ा है उस से (उदीचामिञ्) इस आगामी सूत्र से उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इञ् प्राप्त है उस का बाधक होने के लिये। परन्तु ण्य प्रत्यय का बाधक नहीं होता जैसे। ताक्ष्ण्यः। और तक्षा शब्द इस गण में पढ़ा है यहां उस से अण् तिकादि होने से फिञ् और यस्कादि गण में पढ़ने से ढक् प्रत्यय हो जाते हैं। इस प्रकार तीन प्रयोग होते हैं जैसे। ताक्षः। ताक्षायणिः। ताक्षेयः। तथा विपाश् शब्द यहां और शुभ्रादि गण में भी पढ़ा है इस से उस के दो प्रयोग होते हैं जैसे। वैपाशः। वैपाशेयः।

वसिष्ठस्यापत्यम् । वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धक । श्वाफल्कः । रान्धसः । वृष्णि । वासुदेवः । आनिरुद्धः । कुरु । नाकुलः । साहदेवः । ० इत्यादि ॥ १८१ ॥

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ १८२ ॥ अ० । ४ । १ । ११५ ॥

इस मातृ प्रातिपदिक से अण् तो प्राप्त ही है उकारादेश होने के लिये यह सूत्र है । अपत्य अर्थ में संख्या सं और भद्र पूर्वक मातृ शब्द से उत् आदेश और अण् प्रत्यय भी हो जैसे । द्वयोर्मात्रोरपत्यम् । द्वैमातुरः । षैमातुरः । षाण्मातुरः साम्मातुरः । भाद्रमातुरः । † यहां संख्या आदि का ग्रहण इस लिये है कि सौमात्रः । यहां केवल अण् ही हुआ है ॥ १८२ ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ १८३ ॥ अ० । ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में कन्या शब्द से अण् प्रत्यय और उस को कनीन आदेश भी होवे जैसे । कन्याया अपत्यम् । कानीनः ‡ ॥ १८३ ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥ १८४ ॥
अ० । ४ । १ । ११७ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । यथासंख्य करके वत्स भरद्वाज और अत्रि अपत्य वाच्य हों तो विकर्ण शुङ्ग और छगल प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे, विकर्णस्यापत्यम् । वैकर्णः । जो वत्स का गोत्र हो नहीं तो । वैकर्णिः । शौङ्गः । जो भरद्वाज का गोत्र हो नहीं तो । शौङ्गिः । छागलः । जो आत्रेय गोत्र हो नहीं तो । छागलिः । यहां सर्वत्र पक्ष में इञ् प्रत्यय होता है ॥ १८४ ॥

पीलाया वा ॥ १८५ ॥ अ० । ४ । १ । ११८ ॥

इस पीला प्रातिपदिक से ढक् प्राप्त है उस का यह अपवाद है और पक्ष में ढक् भी होता है और इस को आगाल दिखाया समझना चाहिये क्योंकि अण्

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

किसी से प्राप्त नहीं है। अपत्य अर्थ में पीला प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे जैसे। पीलाया अपत्यम्। पैलः। पक्ष में ढक्। पैलेयः॥ १९५॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ १९६ ॥ अ० । ४ । १ । ११९ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मण्डूक प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय हो। और चकार से अण् विकल्प करके होवे। पक्ष में इञ् भी हो जावे। जैसे। मण्डूकस्यापत्यम्। माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः॥ १९६॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १९७ ॥ अ० । ४ । १ । १२० ॥

यह सूत्र अण् और उस के अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य अर्थ में टावादि स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय विकल्प कर के होवे॥ १९७॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ॥ १९८ ॥

अ० । ७ । १ । २ ॥

जो प्रत्यय के आदि फ ढ ख छ और घ हैं उन के स्थान में यथासंख्य करके आयन। एय। ईन। ईय। और इय आदेश हों जैसे (फ) नाडायनः (ढ) सौपर्णेयः। वैनतेयः (ख) कुलीनः (छ) शालीयः। पैट्वस्त्रीयः (घ) क्षत्रियम्। इत्यादि॥ १९८॥

वा०-वडवाया वृषे * वाच्ये ॥ १९९ ॥

वड़वा प्रातिपदिक से बैल अपत्य वाच्य होतो ढक् प्रत्यय होवे जैसे। वडवाया अपत्यं वृषो वाडवेयः॥ १९९॥

वा०-अण् क्रुंचाकोकिलात्स्मृतः ॥ २०० ॥

सामान्यापत्य में क्रुंचा और कोकिला शब्द से ढक् का बाधक अण् प्रत्यय होवे जैसे। क्रुंचाया अपत्यं क्रौंचः। कोकिलाया अपत्यं कौकिलः॥ २००॥

द्व्यचः ॥ २०१ ॥ अ० । ४ । १ । १२१ ॥

नदी और मानुषी वाची से जो अण् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है। अपत्यार्थ में टावादि स्त्रीप्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे जैसे। दत्ताया अपत्यम्। दात्तेयः। गौपेयः। इत्यादि। यहां द्व्यच् ग्रहण इस लिये है कि। यमुनाया अपत्यम्। यामुनः। यहां ढक् न होवे॥ २०१॥

---

* यद्यपि घोड़ी से बैल की उत्पत्ति असम्भव सा है तथापि बीज के प्रधान पक्ष में अर्थात् जो २ बीज बोया जाता है वही उत्पन्न होता है खेत के गुणों का अनुयायी बीज नहीं होता किन्तु खेत के गुण बीज के गुणों को दो दृष्ट जाते हैं जैसे आदि अन्न जो २ बोये जाते हैं वे ही उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही जो बैल और घोड़ी का

इतश्चानिञः ॥ २०२ ॥ अ० । ४ । १ । १२२ ॥

यह सूत्र सामान्य अण् का अपवाद है । अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययान्त भिन्न इकारान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे जैसे । अत्रेरपत्यम् । आत्रेयः । नैधेयः । पार्णेयः । कापेयः । इत्यादि यहां इकारान्त इस लिये कहा है कि । दाक्षिः । प्लाक्षिः । इञ् भिन्न इस लिये कहा है कि । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । यहां इञन्त से ढक् न होवे और द्व्यच् की अनुवृत्ति इस लिये है कि । मरीचेरपत्यम् । मारीचः यहां ढक् । को बाध के अण् हो जावे ॥ २०२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च * ॥ २०३ ॥ अ० । ४ । १ । १२३ ॥

यह सूत्र इञ् आदि का यथायोग्य अपवाद समझना चाहिये । अपत्यार्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे जैसे । शुभ्रस्यापत्यम् । शौभ्रेयः । वैष्टपुरेयः । इत्यादि ॥ २०३ ॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ २०४ ॥ अ० । ४ । १ । १२४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय हो जैसे । विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः । कौषीतकेयः । यहां काश्यप ग्रहण इस लिये है कि । वैकर्णिः । कौषीतकिः । यहां ढक् न होवे ॥ २०४ ॥

भ्रुवो वुक् च ॥ २०५ ॥ अ० । ४ । १ । १२५ ॥

यह अण् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में भ्रू प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को वुक् का आगम भी हो जैसे । भ्रुवोऽपत्यम् । भ्रौवेयः ॥ २०५ ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ २०६ ॥ अ० । ४ । १ । १२६ ॥

अपत्यार्थ में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय और इन को इनङ् आदेश भी होवे जैसे । कल्याण्या अपत्यम् । काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः । कानिष्ठिनेयः । † इत्यादि ॥ २०६ ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥ अ० । ७ । ३ । १९ ॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हो तो हृद् भग और सिन्धु जिन के अन्त हों उन प्रातिपदिकों के पूर्व और उत्तर पदों में अचों के आदि

* इस प्रकार से इस शुभ्रादि गण को आकृति गण समझना चाहिये कि जिस से । [illegible] । [illegible] । इत्यादि शब्दों में भी ढक् प्रत्यय हो जावे ।

† यहां कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय [illegible] फिर [illegible] इनङ् आदेश [illegible] किये हैं ।

अच् को वृद्धि होवे जैसे । सुभगाया अपत्यम् । सौभागिनेयः । दौर्भागिनेयः । सौहार्दम् । दौर्हार्दम् । साक्तुसैन्धवः । इत्यादि ॥ २०७ ॥

कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ अ० । ४ । १ । १२७ ॥

यहां इनङ् आदेश की अनुवृत्ति चली आती है । अपत्यार्थ कुलटा में प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को इनङ् आदेश होवे जैसे । कुलटाया अपत्यम् । कौलटिनेयः । कौलटेयः ॥ २०८ ॥

चटकाया ऐरक् ॥ २०९ ॥ अ० । ४ । १ । १२८ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में चटका शब्द से ऐरक् प्रत्यय हो जैसे । चटकाया अपत्यम् । चाटकैरः ॥ २०९ ॥

वा॰—चटकाच्च ॥ २१० ॥

यह वार्त्तिक इञ् का अपवाद है । चटक प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे जैसे । चटकस्याऽपत्यम् । चाटकैरः ॥ २१० ॥

वा॰—स्त्रियामपत्ये लुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अपत्य होवे तो ऐरक् प्रत्यय का लुक् हो जावे जैसे । चटकाया अपत्यं स्त्री चटका ॥ २११ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ २१२ ॥ अ० । ४ । १ । १२९ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से ढ्रक् प्रत्यय होवे जैसे । गोधाया अपत्यम् । गौधेरः । शुभ्रादि गण में गोधा शब्द पढ़ा है इस कारण । गौधेयः । यह भी प्रयोग हो जाता है ॥ २१२ ॥

आरगुदीचाम् ॥ २१३ ॥ अ० । ४ । १ । १३० ॥

गोधा की अनुवृत्ति आती है । अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होवे उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । गोधाया अपत्यम् । गौधारः * ॥ २१३ ॥

क्षुद्राभ्यो वा † ॥ २१४ ॥ अ० । ४ । १ । १३१ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है । और पूर्व सूत्र से ढ्रक् की अनुवृत्ति आती है ।

---

* [illegible]

[illegible]

† [illegible]

अपत्यार्थ में क्षुद्रा आदि प्रातिपदिकों से ढ्रक् प्रत्यय होवे पक्ष में ढक् ही जैसे। काणेरः। काणेयः। दासेरः। दासेयः। इत्यादि ॥ २१४ ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ २१५ ॥ अ० । ४ । १ । १३२ ॥

यह सूत्र अण् प्रत्यय का बाधक है। अपत्य अर्थ में पितृष्वसृ प्रातिपदिक से छण् प्रत्यय होवे जैसे। पितृष्वसुरपत्यम्। पैतृष्वस्रीयः ॥ २१५ ॥

ढकि लोपः ॥ २१६ ॥ अ० । ४ । १ । १३३ ॥

अपत्यार्थ में जो ढक् प्रत्यय परे हो तो पितृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप होवे जैसे। पैतृष्वसेयः * ॥ २१६ ॥

मातृष्वसुश्च ॥ २१७ ॥ अ० । ४ । १ । १३४ ॥

यह भी अण् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मातृष्वसृ शब्द से छण् प्रत्यय और ढक् के परे मातृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप भी होवे जैसे। मातृष्वसुरपत्यम् मातृष्वस्रीयः। मातृष्वसेयः ॥ २१७ ॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ २१८ ॥ अ० । ४ । १ । १३५ ॥

यह अण् आदि का अपवाद है। अपत्यार्थ में चतुष्पाद् वाची प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे जैसे। कामण्डलेयः। शैतिबाहेयः। जाम्बेयः। माहिषेयः। सौरभेयः। इत्यादि ॥ २१८ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ २१९ ॥ अ० । ४ । १ । १३६ ॥

यह सूत्र केवल अण् का ही अपवाद है। अपत्यार्थ में गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे जैसे। गृष्ट्या अपत्यम्। गार्ष्टेयः। हार्ष्टेयः। हालेयः। बालेयः। वैश्रेयः। इत्यादि ॥ २१९ ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥ २२० ॥ अ० । ४ । १ । १३७ ॥

यह अण् और इञ् दोनों का बाधक है अपत्यार्थ में राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो जैसे। राज्ञोऽपत्यम्। राजन्यः। श्वशुर्यः ॥ २२० ॥

वा०-राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राजन् शब्द से यत् कहा है सो जातिवाची राजन् शब्द का ग्रहण समझना चाहिये जैसे। राजन्यः। जो क्षत्रिय होवे नहीं तो। राजनः ॥ २२१ ॥

---

* यहां छण् प्रत्यय के परे जो लोप कहा है सो इसी ज्ञापक से पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय होता है।

क्षत्राद्घः ॥ २२२ ॥ अ० । ४ । १ । १३८ ॥

यह सूत्र इञ् का बाधक है । अपत्यार्थ में क्षत्र प्रातिपदिक से घ प्रत्यय
वे जैसे । क्षत्रियः । यहां भी जाति ही समझनी चाहिये । क्यों कि जहां जा
न हो वहां । क्षात्रिः । इसका प्रयोग होवे ॥ २२२ ॥

कुलात्खः ॥ २२३ ॥ अ० । ४ । १ । १३९ ॥

यह भी इञ् का ही अपवाद है । अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख प्रत्यय हो
उत्तर सूत्र में अपूर्वपद ग्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपद सहित और केवल का
ग्रहण होता है जैसे । क्षत्रियकुलीनः । आढ्यकुलीनः । कुलीनः । इत्यादि ॥ २२

अपूर्वपदादन्यतरस्यां * यड्ढकञौ ॥ २२४ ॥ अ० । ४ । १ । १४० ॥

अपत्यार्थ में पूर्वपद रहित कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय विकल्प करके
होवें जैसे । कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः । यहां पद ग्रहण इस लिये है कि
बहुच् पूर्वपद हो तो भी ख प्रत्यय हो जावे । जैसे । बहुकुल्यः । बहुकौलेयकः ।
बहुकुलीनः ॥ २२४ ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥ २२५ ॥ अ० । ४ । १ । १४१ ॥

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आती है । अपत्यार्थ में महाकुल प्रातिपदिक से
अञ् और खञ् प्रत्यय विकल्प करके होवें पक्ष में ख होवे जैसे । माहाकुलः ।
माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥ २२५ ॥

दुष्कुलाड्ढक् ॥ २२६ ॥ अ० । ४ । १ । १४२ ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ढक् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में ख हो जावे
जैसे । दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥ २२६ ॥

स्वसुश्छः ॥ २२७ ॥ अ० । ४ । १ । १४३ ॥

अपत्य अर्थ में स्वसृ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो जैसे । स्वसुरपत्यम् । स्वस्रीयः ।
यह अण् का बाधक है ॥ २२७ ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ २२८ ॥ अ० । ४ । १ । १४४ ॥

यह सूत्र भी अण् का अपवाद है । अपत्यार्थ में भ्रातृ शब्द से व्यत् और चकार
से छ प्रत्यय भी होवे जैसे । भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः ॥ २२८ ॥

* यह अप्राप्त विभाषा इस लिये है कि कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है ।

व्यन् सपत्ने* ॥ २२९ ॥ अ० । ४ । १ । १४५ ॥

सपत्न अर्थात् शत्रु वाच्य होतो भ्रातृ प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो। पाप्मना भ्रातृव्येण। भ्रातृव्यः कण्टकः ॥ २२९ ॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ २३० ॥ अ० । ४ । १ । १४६ ॥

यह सूत्र ढक् आदि का अपवाद है। अपत्यार्थ में रेवती आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। रेवत्या अपत्यम्। रैवतिकः। आश्वपालिकः। माणिपालिकः। इत्यादि ॥ २३० ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ २३१ ॥ अ० । ४ । १ । १४७ ॥

यह ढक् का अपवाद है। निन्दित युवापत्य अर्थ में गोत्रसंज्ञक स्त्रीवाची प्रातिपदिक से ण और चकार से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। गार्ग्या अपत्यं जाल्मो गार्ग्यः। गार्गिकः। ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लौचुकायनः। ग्लौचुकायनिकः। यहां गोत्र ग्रहण इस लिये है कि। कारिकेयो जाल्मः। यहां कारिका शब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है। स्त्रीवाची इस लिये है कि। औपगविर्जाल्मः। यहां न होवे। कुत्सन इस लिये है कि। गार्गेयो माणवकः। यहां निन्दा के न होने से उत्सर्ग ढक् हो गया किन्तु ण और ठक् नहीं हुए ॥ २३१ ॥

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ २३२ ॥ अ० । ४ । १ । १४८ ॥

यहां कुत्सन की अनुवृत्ति चली आती है। अपत्य और कुत्सन अर्थ में वृद्ध संज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय बहुल करके होवे जैसे। भागवित्तेरपत्यम्। भागवित्तिकः। तार्णबिन्दवस्य युवापत्यम्। तार्णबिन्दविकः। पक्ष में फक् और इञ् हो जाते हैं। भागवित्तायनः। तार्णबिन्दविः। यहां वृद्ध ग्रहण अवृद्धों की निवृत्ति के लिये है। सौवीर ग्रहण इस लिये है कि। औपगविः। यहां न होवे। और कुत्सन की अनुवृत्ति इस लिये है कि। भागवित्तायनो माणवकः। यहां भी ठक् न होवे ॥ २३२ ॥

फेश्छ च ॥ २३३ ॥ अ० । ४ । १ । १४९ ॥

कुत्सन और सौवीर की अनुवृत्ति चली आती है। अपत्यार्थ में फिञन्त सौवीर गोत्र वाची प्रातिपदिक से छ और चकार से ठक् प्रत्यय भी होवे जैसे।

* यहां अपत्यार्थ की विवक्षा नहीं है क्योंकि भ्राता का पुत्र शत्रु नहीं भी हो सकता और इसी कारण भ्रातृ शब्द का प्रकृत्यर्थ यहां प्रधान नहीं रहता है किन्तु प्रत्ययार्थ जो शत्रु है वही प्रधान रहता है।

यामुन्दायनीयः । यामुन्दायनिकः । यहां कुत्सन ग्रहण इस लिये है कि । याम्न्दायनिः । यहां यण् का लुक् हो गया है । सौवीर इस लिये है कि । तैकायनिः यहां छ न होवे ॥ २३३ ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥ २३४ ॥ अ० । ४ । १ । १५० ॥

सौवीर को अनुवृत्ति यहां आती है और कुत्सन की निवृत्त हो गई । और यह सूत्र फक् प्रत्यय का अपवाद है । अपत्य अर्थ में सौवीर गोत्र वाची फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से ण और फिञ् प्रत्यय होवे जैसे । फाण्टाहृतेरपत्यम् । फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतायनिः । मैमतः । मैमतायनिः । यहां सौवीर का ग्रहण इस लिये है कि । फाण्टाहृतायनः । मैमतायनः । यहां ण और फिञ् न हुए ॥२३४॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ २३५ ॥ अ० । ४ । १ । १५१ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक यथायोग्य समझना चाहिये । अपत्यार्थ में कुरु आदि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे जैसे । कुरोरपत्यम् । कौरव्यः । गार्ग्यः । माद्रुण्यः । आजमारक्यः । इत्यादि ॥ २३५ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ २३६ ॥ अ० । ४ । १ । १५२ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । अपत्यार्थ में सेनान्त लक्षण और कारि अर्थात् कुंभार आदि कारीगर वाची प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे जैसे । सेनान्त । भीमसेनस्यापत्यम् । भैमसेन्यः *। कारिषेण्यः । हारिषेण्यः । वैष्वक्सेन्यः । औग्रसेन्यः । इत्यादि । लक्षण । लाक्षण्यः । कारि । तान्तुवाय्यः । कौम्भकार्य्यः । इत्यादि ॥ २३६ ॥

उदीचामिञ् ॥ २३७ ॥ अ० । ४ । १ । १५३ ॥

यहां सेनान्त आदि की अनुवृत्ति आती है । अपत्यार्थ में उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में सेनान्त लक्षण और कारि वाची प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे जैसे । भीमसेनस्यापत्यम् । भैमसेनिः । हारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः । कौम्भकारिः । नापितिः । इत्यादि ॥ २३७ ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ २३८ ॥ अ० । ४ । १ । १५४ ॥

यह भी यथायोग्य इञ् आदि का बाधक है । अपत्यार्थ में तिक आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय होवे जैसे । तिकस्यापत्यम् । तैकायनिः । कैतवायनिः । शांशपायनिः । इत्यादि ॥ २३८ ॥

---

* यद्यपि भीमसेन शब्द कुरु वाची होने से ण्य् प्राप्त है तो भी यह विप्रतिषेध से ण्य ही होता है ॥

कौसल्यकार्मार्य्याभ्यां च ॥ २३९ ॥ अ० । ४ । १ । १५५ ॥

यह इञ् प्रत्यय का बाधक है। अपत्यार्थ में कौसल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय होवे जैसे। कौसल्यस्यापत्यम्। कौसल्यायनिः। कार्मार्य्यायणिः ॥२३९॥

वा०-फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च ॥२४०॥

अपत्यसामान्य अर्थ में दगु कोसल कर्मार छाग और वृष प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और प्रत्यय को युट् का आगम होवे जैसे। दागव्यायनिः। कौसल्यायनिः। कार्मार्य्यायणिः। छाग्यायनिः। वार्ष्यायणिः ॥ २४० ॥

अणो द्व्यचः ॥ २४१ ॥ अ० ४ । १ । १५६ ॥

यह सूत्र इञ् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्यार्थ में अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय हो जैसे। कार्त्र्यस्यापत्यम्। कार्त्र्यायणिः। हार्त्र्यायणिः। वाक्कायनिः। इत्यादि यहां अणन्त इस लिये है कि। दाक्षायणः। यहां न हो। और द्व्यच् इस लिये कहा है कि। औपगविः। यहां भी फिञ् न होवे ॥ २४१ ॥

वा०-त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः * ॥ २४२ ॥

अपत्य अर्थ में त्यदादि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। त्यादायनिः। त्यादः। यादायनिः। यादः। तादायनिः। तादः। इत्यादि ॥२४२॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ २४३ ॥ अ० । ४ । १ । १५७ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक है। अपत्यार्थ में गोत्र भिन्न वृद्ध संज्ञक प्रातिपदिकों से उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में फिञ् प्रत्यय होवे जैसे। आम्रगुप्तस्यापत्यम्। आम्रगुप्तायनिः। ग्रामगुप्तायनिः। आमरक्षायणिः। नापितायनिः। इत्यादि यहां उत्तरदेशीय आचार्य्यों का मत इस लिये कहा है कि। आम्रगुप्तिः। यहां फिञ् न होवे। वृद्ध संज्ञक इस लिये है कि। दाक्षदत्तिः। यहां भी न हो। और गोत्र का निषेध इस लिये है कि। औपगविः। यहां भी न होवे ॥ २४३ ॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥ २४४ ॥ अ० । ४ । १ । १५८ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में अपत्य अर्थ में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और इस को कुक् का आगम भी होवे जैसे। वाकिनस्यापत्यम्। वाकिनकायनिः। पक्ष में। वाकिनिः। गारेधकायनिः। गारेधिः। इत्यादि यह अण् और इञ् दोनों का अपवाद है ॥ २४४ ॥

---

* यह वार्त्तिक अण् प्रत्यय का बाधक है। और इस में प्रमाण मिलता है क्योंकि फिञ् किसी एक अर्थ में प्राप्त नहीं। फिञ् के विकल्प से पक्ष में अण् भी हो जाता है।

पुवान्तादन्यतरस्याम् ॥ २४५ ॥ अ० । ४ । १ । १५९ ॥

यह अण् का अपवाद और इस में अप्राप्त विभाषा है। उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में पुवान्त प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और इस को कुक् का आगम विकल्प करके होवे जैसे। गार्गीपुत्रस्यापत्यम्। गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्रायणिः। गार्गीपुत्रिः। वात्सीपुत्रकायणिः। वात्सीपुत्रायणिः। वात्सीपुत्रिः। * इत्यादि ॥२४५॥

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ २४६ ॥ अ० । ४ । १ । १६० ॥

अपत्यार्थ और प्राचीन आचार्यों के मत में वृद्ध संज्ञारहित प्रातिपदिकों से फिन् प्रत्यय बहुल करके हो जावे जैसे। ग्लुचुकस्यापत्यम्। ग्लुचुकायनिः। अहिचुम्बकायनिः। यहां प्राचीनों का ग्रहण इस लिये है कि। ग्लौचुकिः। आहिचुम्बकिः। यहां इञ् हो जाता है और वृद्ध का निषेध इस लिये है किया है कि। दाक्षिः। यहां फिन् न होवे ॥ २४६ ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ २४७ ॥ अ० । ४ । १ । १६१ ॥

जाति अर्थ हो तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय और मनु शब्द को षुक् का आगम हो जावे जैसे। मानुषः। मनुष्यः। यहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता है। यहां अपत्य अर्थ की विवक्षा नहीं है। और जहां अपत्य अर्थ विवक्षित होता है। वहां अण् ही हो जाता है जैसे। मनोरपत्यम्। मानवी प्रजा ॥ २४७ ॥ •

का०—अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ॥ २४८ ॥

मूढ़ निन्दित अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से औत्सर्गिक अर्थात् अण् प्रत्यय हो जावे और मनु शब्द के नकार को णत्व होवे जैसे। मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो माणवः ॥ २४८ ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥ २४९ ॥ अ० । ४ । १ । १६२ ॥

जो पौत्रप्रभृति अर्थात् नाती से आदि लेकर अपत्य नाम सन्तान होता है वह गोत्र संज्ञक होवे जैसे। गर्गस्याऽपत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः। वात्स्यः। यहां पौत्रप्रभृति

---

* यहां (इतोऽनिञः। अ०) इस से फिञ् प्रत्यय तो हो ही जाता फिर कुक् का आगम विकल्प से होने के लिये यह सूत्र है। यह कुक् के आगम का विकल्प और उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में फिञ् का विकल्प इन दो विकल्पों से तीन प्रयोग होते हैं ॥

इस लिये कहा है कि । अनन्तरापत्य अर्थात् पुत्र अर्थ में गोत्र का प्रत्यय न होवे जैसे । कौञ्जिः । गार्गिः * । इत्यादि ॥ २४८ ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥ २५० ॥ अ० । ४ । १ । १६३ ॥

जो उत्पत्ति का प्रबन्ध है सो वंश और जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है जब तक पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष जीवते होवें तब तक जो पौत्र आदि सन्तानों के अपत्य हैं वे युवसंज्ञक होवें। यहां तु शब्द नियमार्थ है कि उस समय युवसंज्ञा हो तो गोत्रसंज्ञा न हो जैसे। गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। इत्यादि॥२५०॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ २५१ ॥ अ० । ४ । १ । १६४ ॥

जो बड़ा भाई जीता हो और पिता आदि मर भी गये हों तो छोटे भाई की युवसंज्ञा जाननी चाहिये जैसे । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । इत्यादि ॥ २५१ ॥

वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति † ॥ २५२ ॥
अ० । ४ । १ । १६५ ॥

जो भ्राता से अन्य सात पीढ़ी में चाचा दादा आदि अधिक अवस्था वाले पुरुष जीते हों तो भी पौत्रप्रभृति के अपत्यों को विकल्प करके युवसंज्ञा होवे जैसे । गर्गस्यापत्यं गार्ग्यो वा गार्ग्यायणः । वात्स्यो वा वात्स्यायनः । दाक्षिर्वा दाक्षायणः । इत्यादि ॥ २५२ ॥

वा०–वृद्धस्य च पूजायाम् ॥ ‡ ॥ २५३ ॥

वृद्ध अर्थात् जिस प्रशंसित को वृद्ध संज्ञा विधान की है सो भी पूजा अर्थ में विकल्प करके युव संज्ञक होवे जैसे । तत्र भवान् गार्ग्यायणः । गार्ग्यो वा । तत्र भवान् वात्स्यायनः । वात्स्यो वा । तत्र भवान् दाक्षायणः । दाक्षिर्वा । इत्यादि । यहां पूजा ग्रहण इस लिये है कि । गार्ग्यः । यहां युव संज्ञा न हो ॥ २५३ ॥

* यहां गोत्र में कुञ्ज शब्द से च्फञ् और गर्ग शब्द से यञ् विहित हैं सो नहीं होते अनन्तरापत्य में इञ् हो जाता है ।

† यहां जीवति शब्द की अनुवृत्ति (जीवति तु०) इस पूर्व सूत्र से चली आती फिर जीवति शब्द का ग्रहण इस लिये है कि संज्ञी का विशेषण वह जीवति होवे । और पूर्व का जो जीवति है वह सपिण्ड का विशेषण समझना चाहिये ।

‡ (वृद्धस्य०) और (यूनश्च०) ये दोनों कारिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे और व्याख्यान भी है परन्तु महाभाष्य में वार्त्तिक रूप से इन का व्याख्यान किया है इस लिये यहां वार्त्तिक ही लिखे हैं ।

वा०-यूनश्च कुत्सायाम् ॥ २५४ ॥

कुत्सा नाम निन्दा अर्थ में युवा को युव संज्ञा विकल्प करके होवे जैसे। गार्ग्यो जाल्मः। गार्ग्यायणो वा। वात्स्यो जाल्मः। वात्स्यायनो वा। दाक्षिर्जाल्मः दाक्षायणो वा। इत्यादि ॥ २५४ ॥

* जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ॥ २५५ ॥ अ० । ४ । १ । १६८ ॥

जो क्षत्रियवाची जनपद शब्द हो तो उस से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय होवे जैसे। पाञ्चालः। ऐक्ष्वाकः। वैदेहः। इत्यादि यहां जनपद शब्द से इस लिये कहा है कि। द्रुह्योरपत्यं द्रौह्यवः। पौरवः। यहां अञ् न होवे। क्षत्रिय वाची का ग्रहण इस लिये है कि। ब्राह्मणस्य पञ्चालस्यापत्यम्। पाञ्चालिः। वैदेहिः। इत्यादि में भी अञ् प्रत्यय न होवे ॥ २५५ ॥

वा०-क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात् तस्य राजन्यपत्यवत् † ॥ २५६ ॥

जो क्षत्रिय के तुल्य जनपद वाची शब्द है उस से राजा के सम्बन्ध में अपत्य के तुल्य प्रत्यय होवे जैसे। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः। वैदेहः। मागधः ‡। इत्यादि ॥ २५६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ २५७ ॥ अ० । ४ । १ । १६९ ॥

यह वक्ष्यमाण ञ्यङ् प्रत्यय का अपवाद अञ् है। अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्वेय और गान्धारि इन शब्दों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे। साल्वेयानामपत्यं तेषां राजा वा साल्वेयः। गान्धारः। २५७ ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥ २५८ ॥ अ० । ४ । १ । १७० ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में क्षत्रिय वाची दो स्वर वाले शब्द मगध कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे। अङ्गानामपत्यं तेषां राजा वा। आङ्गः। वाङ्गः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। इत्यादि ॥ २५८ ॥

* यह जनपद शब्द मुख्य देश का पर्याय वाची है सो इस से देश विशेष पञ्चाल आदि का ग्रहण होता है वे पंचाल आदि शब्द क्षत्रियों और देश विशेष के नाम एक हो से बने रहते हैं।

† यहांतक अपत्याधिकार केवल चला आता है अब जो देश विशेष और क्षत्रिय विशेष के नाम पञ्चाल आदि शब्द हैं उन देश के नामों से तद्राज अर्थात् उन देशों का राजा इस अर्थ में और क्षत्रिय वाची शब्दों से अपत्य अर्थ में यहां से पाद के अन्त पर्यन्त प्रत्यय विधान समझना चाहिये।

‡ इन पञ्चाल आदि शब्दों से तद्राज अर्थ में (वृद्धेत्कोसला०) इस सूत्र से ञ्यङ् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद यहां अञ् विधान है।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥ २५९ ॥ अ० । ४ । १ । १०१ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची वृद्धसंज्ञक इकारान्त कोसल और अजादि प्रातिपदिकों से ञ्यङ् प्रत्यय होवे । यह सूत्र अण् का अपवाद है जैसे । वृद्ध । आम्बष्ठानामपत्यं तेषां राजा वा । आम्बष्ठ्यः । सौवीर्य्यः । इकारान्त । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कौसल्यः । आजाद्यः ॥ २५९ ॥

वा०–पाण्डोर्जनपदशब्दात् क्षत्रियशब्दाड्ड्यण् वक्तव्यः ॥ २६० ॥

जो जनपदवाची पाण्डु क्षत्रिय शब्द है उस से अपत्य और तद्राज अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होवे जैसे । पाण्डूनामपत्यं तेषां राजा वा पाण्ड्यः ॥ २६० ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ २६१ ॥ अ० । ४ । १ । १०२ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची कुरु और नकारादि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे । यह अण् और अञ् का अपवाद है जैसे । कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा कौरव्यः । नकारादि । नैषध्यः । नैपथ्यः । इत्यादि ॥ २६१ ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥ २६२ ॥ अ० । ४ । १ । १०३ ॥

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्व नाम देश विशेष के अवयव प्रत्यग्रथ कलकूट और अश्मक प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे जैसे । औदुम्बरिः । तैलखलिः । माद्रकारिः । यौगन्धरिः । भौलिङ्गिः । शारदण्डिः । प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । इत्यादि ॥ २६२ ॥

ते तद्राजाः ॥ २६३ ॥ अ० । ४ । १ । १०४ ॥

(जनपदशब्दात्०) इस सूत्र से ले के यहां तक जो * प्रत्यय कहे हैं वे तद्राज संज्ञक होते हैं । इस का यह प्रयोजन है कि बहुवचन में लुक् होजावे जैसे । पाञ्चालः । पाञ्चालौ पञ्चालाः । इत्यादि ॥ २६३ ॥

कम्बोजाल्लुक् ॥ २६४ ॥ अ० । ४ । १ । १०५ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में कम्बोज शब्द से विहित जो अञ् उस का लुक् हो जैसे । कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा । कम्बोजः ॥ २६४ ॥

वा०–कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥ २६५ ॥

कम्बोज शब्द से जो लुक् कहा है सो कम्बोज आदि से कहना चाहिये जैसे । कम्बोजः । चोलः । केरलः । शकः । यवनः । ॥ २६५ ॥

---

* इसी प्रकार [illegible] ।

ह

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ २६६ ॥ अ० । ४ । १ । १७६ ॥

जो स्त्री प्रत्यय वा राज्ञी अभिधेय हो तो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्दों से उत्पन्न तद्राज संज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो जैसे । अवन्तीनामपत्यं स्त्री राज्ञी वा । अवन्ती । कुन्ती । कुरू । यहां स्त्री ग्रहण इस लिये है कि । आवन्त्यः कौन्त्यः । कौरव्यः । * यहां लुक् न होवे ॥ २६६ ॥

अतश्च † ॥ २६७ ॥ अ० । ४ । १ । १७७ ॥

जो स्त्री वाच्य हो तो तद्राज संज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होवे जैसे । मद्राणामपत्यं तद्राज्ञी वा । मद्री । शूरसेनी । इत्यादि यहां जाति वाची से (जातेरस्त्री०) इस करके ङीप् प्रत्यय हो जाता है ॥ २६७ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ २६८ ॥ अ० । ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेष नाम भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से विहित तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् न होवे जैसे । प्राच्य । अङ्गानामपत्यं तद्राज्ञी वा । आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । इत्यादि । भर्गादि । भार्गी । कारूषी । कैकेयी । इत्यादि । यौधेयादि । यौधेयी । शौभ्रेयी । शौक्रेयी । इत्यादि ॥ २६८ ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

तेन रक्तं रागात् ॥ २६९ ॥ अ० । ४ । २ । १ ॥

यहां समर्थों का प्रथम आदि सब की अनुवृत्ति चली आती है । तृतीयासमर्थ रङ्गवाची प्रातिपदिकों से रंगने अर्थ में जिस से जो प्रत्यय प्राप्त हो वह हो जावे जैसे । कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम् । काषायम् । माञ्जिष्ठम् । इत्यादि यहां रंग वाची का ग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् । यहां प्रत्यय की उत्पत्ति न होवे ॥ २६९ ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ॥ २७० ॥ अ० । ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति चली आती है । लाक्षा और रोचना

* [illegible]

† [illegible]

प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम् । रौचनिकम् । अधिकार होने से अण् प्रत्यय आता है उस का बाधक यह सूत्र है ॥ २७० ॥

वा०-ठक्प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥ २७१ ॥

अण् का ही अपवाद यह भी वार्त्तिक है । शकल और कर्दम प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । शकलेन रक्तं शाकलिकम् । कार्दमिकम् । २७१ ॥

वा०-नील्या अन् ॥ २७२ ॥

नीली प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय होवे जैसे । नील्या रक्तं नीलम् ॥ २७२ ॥

वा०-पीतात्कन् ॥ २७३ ॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे जैसे । पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ २७३ ॥

वा०-हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ २७४ ॥

हरिद्रा और महारजन प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे । हरिद्रया रक्तं हारिद्रम् * । माहारजनम् ॥ २७४ ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ २७५ ॥ अ० । ४ । २ । ३ ॥

युक्त अर्थ जो काल अभिधेय हो तो तृतीयासमर्थ नक्षत्र विशेषवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । पुष्येण युक्तः कालः पौषी रात्री । पौषमहः । माघी रात्री । माघमहः । इत्यादि यहां नक्षत्र वाची का ग्रहण इस लिये है कि । चन्द्रमसा युक्ता रात्री । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २७५ ॥

लुबविशेषे ॥ २७६ ॥ अ० । ४ । २ । ४ ॥

जहां काल का अवयव रूप कोई विशेष अर्थ विदित न हो वहां पूर्व सूत्र से जो विहित प्रत्यय उस का लुप् हो जावे जैसे । पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः । अद्य कृत्तिका । अद्य रोहिणी । यहां अविशेष इस लिये कहा है कि पौषी रात्री । पौषमहः । यहां लुप् न होवे ॥ २७६ ॥

दृष्टं साम ॥ २७७ ॥ अ० । ४ । २ । ७ ॥

साम वेद का देखना अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ होवे तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अण् आदि यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । वसिष्ठेन दृष्टं साम

* हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ । हरिद्रा से रंगे हुए के समान मुर्गे के पद हैं । इस प्रयोग से उपमान वाची शब्द से भी अण् प्रत्यय हो जाता है ।

वासिष्ठम् । वैश्वामित्रम् । देवेन दृष्टं साम देव्यं दैवं वा । प्रजापतिना दृष्टं साम प्राजापत्यम् । इत्यादि ॥ २७७ ॥

वा०–सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक् * ॥ २७८ ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं वे इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द से विवक्षित हैं। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और कलि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे जैसे । अग्निना दृष्टं सामाग्नेयम् । अग्नेरागतमाग्नेयम । अग्नेःस्वमाग्नेयम् । अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम् । इत्यादि । इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम् । इत्यादि भी समझो ॥ २७८ ॥

का०–दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते ।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ २७९ ॥

साम वेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् संज्ञक होवे जैसे । उशनसा दृष्टं साम । औशनसम् । औशनम् । यहां डित् पक्ष में टि का लोप हो जाता है । तथा (तत्रजातः) इस आगामी प्रकरण में अपने अपवाद का अपवाद होके फिर विधान किया अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् होवे जैसे । शतभिषजि जातः शातभिषजः । शातभिषः । डित् का प्रयोजन यहां भी पक्ष में टि लोप है यहां शतभिषज् नक्षत्र वाची प्रातिपदिक से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय होकर उस का अविशेष अर्थ में लुप् हो जाता है पीछे शैषिक जात अर्थ में अण् का बाधक कालवाची से ठञ् प्राप्त होता है फिर ठञ् का बाधक (सन्धिवेला०) इस से अण् विधान किया है । तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ईकक् प्रत्यय होवे जैसे । द्वैतीयीकम् । तार्तीयीकम् । और विद्या वाची तीय प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ईकक् न होवे जैसे । द्वितीया विद्या तृतीया विद्या । और गोत्र वाची प्रातिपदिकों से सामवेद के देखने अर्थ में अङ्क आदि अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं वे यहां भी होवें । जैसे (गोत्रचरणा०) इस सूत्र से गोत्रवाची शब्दों से अंक अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है वैसे ही यहां भी होवे । जैसे । गार्ग्येण दृष्टं साम गार्गकम् । वात्स्यकम् । औपगवेन दृष्टं साम औपगवकम् । कापटवकम् । इत्यादि ॥ २७९ ॥

परिवृतो रथः ॥ २८० ॥ अ० । ४ । २ । १० ॥

जो परिवृत अर्थात् किसी चाम आदि से मढ़ा रथ आदि यान अर्थ वाच्य हो तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । चर्मणा परिवृतो

* इस वार्त्तिक को काशिका आदि पुस्तकों में । सर्वत्र । इतना सूत्र लिखा है फिर वार्त्तिक भी ऐसा ही लिखा है सो महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध जानना चाहिये ।

रथ्याभेधः । काम्बलः । वास्त्रः । इत्यादि यहां रथ का ग्रहण इस लिये किया है कि । वस्त्रेण परिहृतं शरीरम् । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८० ॥

कौमारापूर्ववचने ॥ २८१ ॥ अ० । ४ । २ । १२ ॥

पूर्व जिसका किसी के साथ विवाह विषयक कथन भी न हुआ हो उस अपूर्व वचन अर्थ में कुमारी शब्द से अण् प्रत्ययान्त कौमार निपातन किया है ॥ २८१ ॥

वा०— कौमारापूर्ववचनइत्युभयतः स्त्रियाअपूर्वत्वे ॥ २८२ ॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री और पुंलिङ्ग में कौमार शब्द निपातन किया है जैसे । अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्त्ता । अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्य्या * ॥ २८२ ॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ २८३ ॥ अ० । ४ । २ । १३ ॥

उद्धृत अर्थात् उद्धरणे अर्थ में सप्तमीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । पंचकपालेषूद्धृत ओदनः पंचकपालः † । शरावेषूद्धृतः शारावः । इत्यादि यहां पात्रवाची का ग्रहण इस लिये है कि । पाणावुद्धृत ओदनः । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८३ ॥

साऽस्मिन् पौर्णमासीति ॥ २८४ ॥ अ० । ४ । २ । २० ॥

अधिकरण अर्थ वाच्य होवे तो पौर्णमासी विशेष वाची प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी । पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स पौषो मासः । पौषोऽर्धमासः । पौषः सम्वत्सरः । इसी प्रकार । मघानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी माघी । साऽस्मिन्वर्त्तत इति माघो मासः । फाल्गुनः । चैत्रः । वैशाखः । ज्यैष्ठः । आषाढः । श्रावणः । भाद्रपदः । आश्विनः । कार्त्तिकः । मार्गशीर्षः । इस सूत्र में इति करण से संज्ञा ग्रहण का प्रयोजन सूत्रकार का है ॥ २८४ ॥

वा—साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम् ‡ ॥ २८५ ॥

(साऽस्मिन्०) इस सूत्र में संज्ञा ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जहां प्रकृति

* इस वार्त्तिक का प्रयोजन यह है कि प्रथम विधान तो कुमारी शब्द से ही होवे परन्तु अन्यार्थ दोनों लिंग में रहे । अपूर्व वचन अर्थ का संबन्ध कुमारी के साथ ही रहे । जैसे पूर्व जिस का कोई पति बनने मात्र भी न हुआ हो ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पुरुष कौमार और वैसी ही कुमारी पति को प्राप्त हुई कौमारी ।

† यहां पंचकपाल शब्द से (द्विगोर्लुगनपत्ये) इस पूर्व लिखित सूत्र से प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय का लुक् किन्तु संज्ञा के होने से ही जाता है ।

‡ काशिका आदि पुस्तकों में संज्ञा ग्रहण सूत्र में ही मिला दिया है सो ठीक नहीं है क्यों कि वार्त्तिक पढ़ते हैं । और यहां कैयट ने भी लिखा है कि । संज्ञाग्रहणं दृष्टेऽनार्थमिति वार्त्तिककारवचनम् ।

प्रत्यय के समुदाय में महिनों की संज्ञा प्रगट हो वहां प्रत्यय होवे और। पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पंचदशरात्रे। यहां प्रत्यय न हो ॥ २८५ ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥ २८६ ॥ अ० । ४ । २ । २१ ॥

यह सूत्र पूर्व सूत्र से प्राप्त अण् का अपवाद है। पौर्णमासी समानाधिकरण आग्रहायणी और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे। आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स आग्रहायणिको मासः। अर्द्धमासोवा आश्वत्थिकः ॥ २८६ ॥

* विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः ॥ २८७ ॥ अ० । ४ । २ । २२ ॥

पौर्णमासी समानाधिकरण फाल्गुनी श्रवणा * कार्त्तिकी और चैत्री प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में विकल्प करके ठक् प्रत्यय हो और पक्ष में अण् हो जावे जैसे। फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स फाल्गुनिको मासः। फाल्गुनो मासः। श्रावणिको मासः श्रावणो मासः। कार्त्तिकिको मासः। कार्त्तिको मासः। चैत्रिको मासः। चैत्रो मासः ॥ २८७ ॥

साऽस्य देवता ॥ २८८ ॥ अ० । ४ । २ । २३ ॥

शेष कारक वाच्य हो तो प्रथमासमर्थ देवता विशेष वाची प्रातिपदिकों से यथायोग्य प्रत्यय हो जैसे। प्रजापतिर्देवताऽस्य प्राजापत्यम् †। इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः। ऐन्द्रो मंत्रः। ऐन्द्री ऋक्। इत्यादि ॥ २८८ ॥

कस्येत् ॥ २८९ ॥ अ० । ४ । २ । २४ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अण् प्रत्यय तो हो जाता फिर इकारादेश होने के लिये यह सूत्र है। देवता समानाधिकरण क प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय और प्रकृति को इकारादेश भी होवे जैसे। को देवताऽस्य कायं हविः। कायो मन्त्रः। कायी ऋक्। यहां इत् में तपर करण तत्काल का बोध होने के लिये है ॥ २८९ ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥ २९० ॥ अ० । ४ । २ । ३० ॥

* इस सूत्र में [illegible] विभाषा इस लिये है कि ठञ् किसी से प्राप्त नहीं अण् प्राप्त है उसी का यह अपवाद है।

† [illegible] वाची देवता शब्द से युक्त [illegible] [illegible] अ० ४ । १ । ८५ इस सूत्र से [illegible] [illegible]

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण वायु ऋतु पितृ और उषस् प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में अण् का बाधक यत् प्रत्यय होवे जैसे। वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्। ऋतव्यम्। पित्र्यम्। उषस्यम्॥ २८०॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च॥ २८१॥ अ०। ४। २। ३१॥

यहां यत् की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से चली आती है। प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण द्यावापृथिवी आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होवें जैसे। द्यावापृथिव्यौ देवतेऽस्य द्यावापृथिवीयम्। द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्। शुनासीर्यम्। मरुत्वतीयम्। मरुत्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्। अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्। वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्। गृहमेध्यम्॥ २८१॥

कालेभ्यो भववत्॥ २८२॥ अ०। ४। २। ३३॥

(तत्र भवः) इस अधिकार में जिन कालवाची प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है वही यहां देवता समानाधिकरण काल विशेषवाची प्रातिपदिक से होवे जैसे। संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः। यहां सामान्य काल वाची से है। प्रावृट् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः। यहां ण्य। पौषो देवताऽस्य पैषम्। पौष शब्द का संधिवेलादिकों में पाठ होने से अण् होता है। इत्यादि प्रकरण की योजना करनी चाहिये॥ २८२॥

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्॥ २८३॥ अ०। ४। २। ३४॥

देवता समानाधिकरण महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे। महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्॥ २८३॥

वा०—ठञ्प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्ततइति नवयज्ञादिभ्य-उपसंख्यानम्॥ २८४॥

काल अधिकरण अभिधेय होवे तो नवयज्ञादि प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः। इत्यादि॥ २८४॥

वा०—पूर्णमासादण्॥ २८५॥

पूर्व वार्त्तिक से कालाधिकरण की अनुवृत्ति आती है। कालाधिकरण अर्थ में पूर्णमास प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो। जैसे। पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्त्तते

इति पौर्णमासी तिथि:। यहां पहले अदयाद् ठञ् का बाधक अण् है ॥ २८५ ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहा: ॥ २८६ ॥ अ० । ४ । २ । ३६ ॥

भ्राता अर्थ वाच्य हो तो पितृ और मातृ शब्दों से व्यत् तथा डुलच् प्रत्यय संख्य करके निपातन किये हैं जैसे। पितुर्भ्राता पितृव्य:। मातुर्भ्राता मातुल:। पिता का भाई पितृव्य और माता का भाई मातुल कहाता है। और मातृ, पितृ प्रातिपदिकों से पिता अर्थ में डामहच् प्रत्यय निपातन किया है जैसे। मातु: पिता मातामह:। पितु: पिता पितामह:। माता का पिता मातामह नाना और पिता का पिता पितामह दादा कहाते हैं ॥ २८६ ॥

वा०-मातरि षिच्च ॥ २८७ ॥

मातृ अर्थ अभिधेय होवे तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा डामहच् प्रत्यय षित् हो जावे जैसे। मातुर्माता मातामही। पितुर्माता पितामही। माता की माता नानी और पिता की माता दादी। यहां षित् करने का प्रयोजन यह है कि स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो जावे ॥ २८७ ॥

वा०-अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसच: ॥ २८८ ॥

अवि प्रातिपदिक से दुग्ध अर्थ में सोढ दूस और मरीसच् प्रत्यय होवें जैसे। अवेर्दुग्धमविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम् ॥ २८८ ॥

वा०-तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ ॥ २८९ ॥

निष्फल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिञ्ज और पेज प्रत्यय होवें जैसे। निष्फलं तिलं तिलपिञ्जम्। तिलपेजम् ॥ २८९ ॥

वा०-पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥ ३०० ॥

पूर्वोक्त पिञ्ज प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में डित् होवे जैसे। तिल्पिञ्जं दण्डनतम्। यहां डित् होने से टि संज्ञक अकार का लोप हो जाता है ॥ ३०० ॥

तस्य समूह: ॥ ३०१ । अ० । ४ । २ । ३६ ॥

यह अधिकार सूत्र है। षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होवें जैसे। वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्। काकानां समूह: काकम्। इत्यादि ॥ ३०१ ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्या-जादुञ् ॥ ३०२ ॥ अ० । ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थ जो गोत्रवाची उक्ष उष्ट्र उरभ्र राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य और अज प्रातिपदिक हैं उन से समूह अर्थ में अण् का बाधक वुञ् प्रत्यय होवे जैसे । ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम् । गार्ग्यकम् । वात्स्यकम् । गार्ग्यायणकम् * । इत्यादि । उक्ष्णां समूह औक्षकम् । औष्ट्रकम् । औरभ्रकम् । राजकम् । राजन्यकम् । राजपुत्रकम् । वात्सकम् । मानुष्यकम् । † आजकम् ॥ ३०२ ॥

वा०—वृद्धाच्च ॥ ३०३ ॥

वृद्ध शब्द से भी समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो जैसे । वृद्धानां समूहो वार्द्धकम् ॥ ३०३ ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥ ३०४ ॥ अ० । ४ । २ । ४१ ॥

ब्राह्मण माणव और वाडव प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय होवे जैसे । ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ॥ ३०४ ॥

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पृष्ठ शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये जैसे । पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यम् ॥ ३०५ ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ३०६ ॥ अ० । ४ । २ । ४२ ॥

समूह अर्थ में ग्राम जन और बन्धु प्रातिपदिकों से तल् प्रत्यय होवे जैसे । ग्रामाणां समूहो ग्रामता । जनता । बन्धुता ॥ ३०६ ॥

वा०—गजसहायाभ्यां च ॥ ३०७ ॥

गज और सहाय प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होवे जैसे । गजानां समूहो गजता । सहायता । इस वार्त्तिक का सहाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में मिला दिया है ॥ ३०७ ॥

वा०—अह्नः खः क्रतौ ॥ ३०८ ॥

यज्ञ अर्थ में अहन् प्रातिपदिक से ख प्रत्यय हो जैसे । अह्नां समूहः अहीनः क्रतुः ॥ ३०८ ॥

---

* यहां महाभाष्य के प्रमाण से गोत्र में वृद्ध का भी ग्रहण करते हैं इस [illegible] आदि के आयनिय आदि शब्दों में वुञ् प्रत्यय होता है ।

† यहां राजन्य और मनुष्य शब्द के यकार का [illegible] है सो [illegible] आदि के बीच नहीं होता ।

वा०–पर्श्वा णस् ॥ ३०९ ॥

पर्शु प्रातिपदिक से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय होवे जैसे। पर्शूनां समूहः पार्शवम्। णस् प्रत्यय में सित् करण के होने से पद संज्ञा होकर भ संज्ञा के कार्य उवर्णान्त अंग को गुण नहीं होता ॥ ३०९ ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ३१० ॥ अ० । ४ । २ । ४३ ॥

अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे। कुमारीणां समूहः कौमारम्। कैशोरम्। वाधूटम्। पैरण्डम्। कपोतानां समूहः कापोतम्। मायूरम्। इत्यादि ॥ ३१० ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ अ० । ४ । २ । ४४ ॥

खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे। खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। वाडवम्। इत्यादि यह सूत्र ठक् का बाधक है ॥ ३११ ॥

अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ ३१२ ॥

क्षुद्रक और मालव ये दोनों शब्द जनपद क्षत्रियवाची हैं। उन से उत्पन्न हुए तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके अन्तोदात्त स्वर हो जाता है। फिर अनुदात्तादि के होने से अञ् प्रत्यय तो हो जाता फिर गोत्र वाची से (गोत्रोक्षो०) इस से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद अञ् विधान किया है। और यह वार्तिक नियमार्थ भी है कि क्षुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा अर्थ हो में अञ् प्रत्यय होवे अन्यत्र नहीं जैसे। क्षौद्रकमालवी सेना। और जहां सेना संज्ञा न हो वहां। क्षौद्रकमालवकम्। गोत्रवाची से वुञ् प्रत्यय हो जावे ॥ ३१२ ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ३१३ ॥ अ० । ४ । २ । ४६ ॥

समूह अर्थ में चित्त वर्जित हस्ति और धेनु प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। अपूपानां समूहः। आपूपिकम्। शाष्कुलिकम्। शाक्तुकम्। इत्यादि। हास्तिकम् *। धैनुकम् ॥ ३१३ ॥

विषयो देशे ॥ ३१४ । अ० । ४ । २ । ५१ ॥

जो वह विषय देश होवे तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे।

* यहां (प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गवि०) इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग हस्तिनी शब्द से भी प्रत्यय हो जाता है जैसे। हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्। और (भस्याढे तद्धिते) इस वार्तिक से पुंवद्भाव होता है।

रही जावे जैसे। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमधीते वेद वा पाणिनीयः । पाणिनीया (ब्राह्मणी) काशकृत्स्नेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना। यहां अनुपसर्जन के न होने से फिर ङीप् नहीं होता ॥३२२॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ ३२३ ॥ अ० । ४ । २ । ६५ ॥

छन्द और ब्राह्मण ये दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त अध्येतृ वेदितृ प्रत्ययार्थ विषयक हों अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों के विना प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग न होवे जैसे। कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीते ते कठाः । मौदाः। पैप्पलादाः। आथर्वणिकः। वाजसनेयिनः। ब्राह्मण। ताण्डिनः। भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। यहां छन्दो ब्राह्मण ग्रहण इस लिये है कि। पाणिनीयं व्याकरणम्। पैङ्गी कल्पः। यहां तद्विषयता न होवे ॥ ३२३ ॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ३२४ ॥ अ० । ४ । २ । ६६ ॥

यह सूत्र मत्वर्थ प्रत्ययों का अपवाद है। जो देश का नाम होवे तो अस्ति समानाऽधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे। उदुम्बरा अस्मिन् सन्ति–औदुम्बरो देशः। बाल्वजः। पार्वतः। यहां तन्नाम ग्रहण इस लिये है कि गोधूमाः सन्त्यस्मिन् देशे। यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३२४ ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ३२५ ॥ अ० । ४ । २ । ६७ ॥

निवृत्त अर्थ में तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे। सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा। कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ॥ ३२५ ॥

तस्य निवासः ॥ ३२६ ॥ अ० । ४ । २ । ६८ ॥

जहां निवास देश अर्थ वाच्य हो वहां षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे। ऋजुनावानां निवासो देशः आर्जुनावो देशः। शैबः। औदिष्टः। उलपस्य निवासो देशः–औलपः। कौरवः। इत्यादि ॥ ३२६ ॥

अदूरभवश्च ॥ ३२७ ॥ अ० । ४ । २ ॥ ६९ ॥

अदूरभव अर्थात् समीप अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे। विदिशाया अदूरभवं वैदिशं नगरम्। हिमवतोऽदूरभवं हैमवतम्। हिमालयस्यादूरभवो देशो हैमालयः। इत्यादि। इस सूत्र से आगे चारों अर्थों को अनुवृत्ति चलती है इसी से यह प्रकरण चातुरर्थिक कहाता है ॥ ३२७ ॥

ओरञ् ॥ ३२८ ॥ अ० । ४ । २ । ७० ॥

उक्त चारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो जैसे । अरडु । आरडवम् । कक्षतु । काक्षतवम् । कर्कटेलु । कार्कटेलवम् । रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवो वा रौरवः । परशुना निर्वृत्तं पारशवम् । इत्यादि ॥ ३२८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ३२९ ॥ अ० । ४ । २ । ८० ॥

यह सूत्र अण् का अपवाद है । अरीहणादि सत्रह गणस्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में यथासंख्य करके वुञ् आदि सत्रह १७ प्रत्यय होते हैं आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ योग होता है अरीहणादिकों से वुञ् । आरीहणकम् । द्रौघणिकम् । खदिराणामदूरभवं नगरम् । खादिरकम् । कृशाश्व आदि से छण् । कार्शाश्वीयम् । आरिष्टीयः । ऋश्य आदि से क । ऋश्यकः । न्यग्रोधकः । शिरकः । कुमुद आदि से ठच् । कुमुदिकम् । शर्करिकम् । न्यग्रोधिकम् । काश आदि से इल । काशिलम् । वाशिलम् । तृण आदि से स । तृणसः । नडसः । बुससः । प्रेक्षा आदि से इनि । प्रेक्षी । हलकी । मधुकी । अश्म आदि से र । अश्मरः । यूषरः । रूषरः । मीनरः । सखि आदि से ढञ् । साखेयम् । साखिदत्तेयम् । संकाश आदि से ण्य । सांकाश्यम् । काम्पिल्यम् । सामीर्यम् । बल आदि से य । बल्यः । कुल्यम् । पक्ष आदि से फक् । पाक्षायणः । तैषायणः । आण्डायनः । कर्ण आदि से फिञ् । कार्णायनिः । वासिष्ठायनिः । सुतंगम आदि से इञ् । सौतंगमिः । मौनचित्तिः । वैश्वचित्तिः । प्रगदिन् आदि से ञ्य । प्रागद्यम् । मागद्यम् । शारद्यम् । वराह आदि से कक् । वाराहकम् । पालाशकम् । और कुमुदादि कों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । कौमुदिकम् । गौमयिकम् । इत्यादि ॥ ३२९ ॥

जनपदे लुप् ॥ ३३० ॥ ४ । २ । ८१ ॥

जहां जनपद अर्थात् देश अभिधेय रहै वहां उक्त चार अर्थों में जो तद्धित संज्ञक प्रत्यय होता है उस का लुप् हो जैसे । पंचालानां निवासो जनपदः पंचालाः । कुरवः । मत्स्याः । अङ्गाः । वङ्गाः । मागधाः । पुण्ड्राः ० । इत्यादि ॥ ३३० ॥

[illegible]

शेषे ॥ ३३१ ॥ अ० । ४ । २ । ९२ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस का अधिकार (तस्येदम्) इस आगामी सूत्र पर्यन्त जाता है । अपत्य आदि और उक्त चार अर्थों से जो भिन्न अर्थ हैं सो शेष कहाते हैं इस सूत्र से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें सो २ शेष अर्थों में जानो। और यह विधि सूत्र भी है जैसे । चक्षुषा गृह्यते । चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः । वितण्डया प्रवर्त्तते वैतण्डिकः । उलूखले क्षुण्णः औलूखलो यावकः । अश्वैरुह्यते । आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते । चातुरं शकटम् इत्यादि । यहां सर्वत्र यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं ॥ ३३१ ॥

राष्ट्रावारपाराद्घखौ ॥ ३३२ ॥ अ० । ४ । २ । ९३ ॥

राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ और ख प्रत्यय होवें । जात आदि शेष अर्थों में और उन २ अर्थों में जो २ समर्थ विभक्ति हो सो २ सर्वत्र जाननी चाहिये जैसे । राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥ ३३२ ॥

वा०—विगृहीतादपि ॥ ३३३ ॥

विगृहीत कहते हैं भिन्न २ को अर्थात् अवापार शब्दों से अलग २ भी ख प्रत्यय हो जैसे । अवारीणः । पारीणः ॥ ३३३ ॥

वा०—विपरीताच्च ॥ ३३४ ॥

पार पूर्व और अवार पर हो तो भी समस्त प्रातिपदिक से ख होवे जैसे । पारावारीणः ॥ ३३४ ॥

ग्रामाद्यखञौ ॥ ३३५ ॥ अ० । ४ । २ । ९४ ॥

जात आदि अर्थों में ग्राम प्रातिपदिक से य और खञ् प्रत्यय होवें जैसे । ग्रामे जातो भवः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥ ३३५ ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ३३६ ॥ अ० । ४ । २ । ९७ ॥

यह सूत्र दक्षिणा आदि अव्यय शब्दों से त्यप् प्राप्त है उस का बाधक है । दक्षिणा आदि तीन अव्यय शब्दों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होवे जैसे । दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ॥ ३३६ ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ ३३७ ॥ अ० । ४ । २ । १०० ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् और प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में यत् प्रत्यय हो जैसे । दिवि भवो दिव्यः । प्राग्भवं प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

यह सूत्र अण् प्रत्यय का अपवाद है। और यहां प्राच् आदि अव्यय शब्दों का रूप नहीं है किन्तु यौगिकों का है और जहां इन का अव्यय में ग्रहण होता है वहां आगामी सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं जैसे । प्राक्तनम् । प्रत्यक्तन इत्यादि ॥ ३३७ ॥

अव्ययात्त्यप् ॥ ३३८ ॥ अ० । ४ । २ । १०३ ॥

अव्यय प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में त्यप् प्रत्यय होवे । यह भी सूत्र अण् आदि अनेक प्रत्ययों का अपवाद है । यहां महाभाष्यकार ने परिगण न किया है कि अमा इह क्व तथा तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त इतने ही अव्ययों से त्यप् होवे जैसे । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । यतस्त्यः । तत्रत्यः । अत्रत्यः । कुत्रत्यः । इत्यादि यहां परिगणन का प्रयोजन यह है कि । औपरिष्टः । पौरस्तः । पारस्तः । इत्यादि प्रयोगों में त्यप् न होवे ॥ ३३८ ॥

वा०—त्यब्नेर्ध्रुवे ॥ ३३९ ॥

नि अव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे जैसे । निरन्तरं भवं नित्यं ब्रह्म ॥ ३३९ ॥

वा०—निसो गते ॥ ३४० ॥

निस् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय हो जैसे । निर्गतो निष्ट्यः ॥ ३४० ॥

वा०—अरण्याण्णः ॥ ३४१ ॥

अरण्य शब्द से शेष अर्थों में ण प्रत्यय होवे जैसे । अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः ॥ ३४१ ॥

वा०—दूरादेत्यः ॥ ३४२ ॥

दूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में एत्य प्रत्यय हो जैसे । दूरे भवो दूरेत्यः ॥ ३४२ ॥

वा०—उत्तरादाहञ् ॥ ३४३ ॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में आहञ् प्रत्यय हो जैसे । उत्तरे जात औत्तराहः ॥ ३४३ ॥

वा०—अव्ययात्त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥ ३४४ ॥

आविस् अव्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेद विषय में त्यप् प्रत्यय हो जैसे। आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु ॥ ३४४ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ३४५ । अ० । १ । १ ७३ ॥

जिस समुदाय के अचों के बीच में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो अर्थात् आकार ऐकार और औकार होवें तो वह समुदाय वृद्ध संज्ञक होवे इस का फल ॥३४५॥

वृद्धाच्छः ॥ ३४६ ॥ अ० । ४ । २ । ११४ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त अण् आदि प्रत्यय हों जैसे । मालीयः । शालीयः । औपगवीयः । कापटवीयः । इत्यादि । अव्ययात्यप् । तीरूप्योत्तरपदा० । उदीच्यग्रामाच्च० । प्रस्थोत्तरपद० । यहां इन सूत्रों से ये प्रत्यय और वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है वहां पर विप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है जैसे । आरात् अव्यय शब्द है इस से छ हुआ तो आरातीयः । वायसतीर शब्द से अञ् और छ भी प्राप्त है फिर छ ही होता है । जैसे । वायसतीरीयः । इसी प्रकार रूप्योत्तरपद माणिरूप्य वृद्ध प्रातिपदिक से परत्व से छ प्राप्त है उस का भी अपवाद यकारोपध होने से (धन्वयोपधा०) इस से वुञ् होता है जैसे । माणिरूप्यकः । वाडवकर्ष-उदीच्यग्राम अ-वृद्धात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्व से होता है जैसे । वाडवकर्षीयः । औ-लूक प्रोपध वृद्ध प्रातिपदिक से पर विप्रतिषेध करके छ होता है जैसे । औलूकीयम् अब इस के आगे वृद्ध संज्ञा में जो विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं सो लिखते हैं ॥३४६॥

वा०-वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥ ३४७ ॥

जो किसी मनुष्य आदि के नाम हैं उन की विकल्प करके वृद्धसंज्ञा होवे जैसे । देवदत्तीयाः । दैवदत्ताः । यज्ञदत्तीयाः । याज्ञदत्ताः । इत्यादि ॥ ३४७ ॥

वा०-गोत्रोत्तरपदस्य च ॥ ३४८ ॥

गोत्र प्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिन के उत्तरपद में हों उन की वृद्धसंज्ञा हो जैसे । घृतप्रधानो रौढिः । घृतरौढिः । तस्यच्छात्राः । घृतरौढीयाः । ओदनप्रधानः पाणिनिरोदनपाणिनिस्तस्यच्छात्रा ओदनपाणिनीयाः । वृद्धाम्भीयाः । वृद्धकाश्यपीयाः । इत्यादि ॥ ३४८ ॥

वा०-जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥ ३४९ ॥

जिह्वाकात्य और हरितकात्य शब्दों को वृद्धसंज्ञा न हो गोत्र उत्तरपद होने से पूर्व वार्त्तिक से प्राप्त है उस का निषेध है जैसे । जैह्वाकाताः । हारितकाताः ॥३४९॥

त्यदादीनि च ॥ ३५० ॥ अ० । १ । १ । ७४ ॥

और त्यद् आदि प्रातिपदिक भी वृद्ध संज्ञक होते हैं जैसे ।त्वदीयम् । त्वदीयम् । मदीयम् । एतदीयम् । इदमीयम् । अदसीयम् । त्यदीयम् । मदीयम् ।त्वादायनिः । मादायनिः । इत्यादि यहां सर्वत्र वृद्ध संज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ३५० ॥

भवतष्ठक्छसौ ॥ ३५१ ॥ अ० । ४ । २ । ११५ ॥

शेष अर्थों में वृद्ध संज्ञक भवत् प्रातिपादिक से ठक् और छस् प्रत्यय हों । भवत इदं भावत्कम् । छस् प्रत्यय में सित् करण पद संज्ञा के लिये है । भवदीयम् । इस भवत् शब्द को त्यदादिकों से वृद्ध संज्ञा हो के छ प्रत्यय प्राप्त है उसका बाधक है ॥ ३५१ ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ ३५२ ॥ अ० । ४ । २ । १२६ ॥

शेष अर्थों में प्राग् देश वाची रेफोपध और ईकारान्त प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो जैसे । पाटलिपुत्रकाः । ऐकचक्रकाः । ईकारान्त । काकन्दी । काकन्दकाः । माकन्दी । माकन्दकाः । यहां प्राचां ग्रहण इस लिये है कि दात्तामित्रीयः । यहां वुञ् प्रत्यय न हो ॥ ३५२ ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥ ३५३ ॥ अ० । ४ । २ । १२५ ॥

शेष अर्थों में बहुवचन विषयक वृद्धसंज्ञारहित जो जनपदवाची और किसी के अवधि वाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो । अवृद्ध जनपद से । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः । आङ्गकः । वाङ्गकः । कालिंगकः । अवृद्ध जनपदावधि । अजमीढाः । अजक्रन्दाः । आजमीढकः । आजक्रन्दकः । वृद्धजनपद । दार्वाः । जाम्बाः । दार्वकः । जाम्बकः । वृद्धजनपदावधि । कालिञ्जराः । वैकुलिशाः । कालिञ्जरकः । वैकुलिशकः ॥ ३५३ ॥

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥ ३५४ ॥ अ० । ४ । २ । १२८ ॥

कुत्सन और प्रावीण्य अर्थात् निन्दा और प्रशंसा शेष अर्थों में नगर प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो । नागरकश्चौरः । नागरकः प्रवीणः । कुत्सन और प्रवीणता ग्रहण इस लिये है कि । नागरा ब्राह्मणाः । यहां वुञ् न हो ॥ ३५४ ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ ३५५ ॥ अ० । ४ । २ ॥ १३१ ॥

शेष अर्थों में मद्र और वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । मद्रेषु जातः । मद्रकः । वृजिकः । यहां बहुवचन विषयक अवृद्ध जनपद अर्थों से वुञ् प्राप्त है इस का यह अपवाद है ॥ ३५५ ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥ ३५६ ॥ अ० । ४ । ३ । १ ॥

शेष अर्थ में युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिकों से खञ् और चकार से छ प्रत्यय हो। और अन्यतरस्याम् ग्रहण से पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । युष्माकमिदम् । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । युष्मदीयः । अस्मदीयः । यौष्माकः । आस्माकः ॥ ३५६ ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ ३५७ ॥ अ० । ४ । ३ । २ ॥

शेष अर्थों में तस्मिन् नाम खञ् और अण् प्रत्यय परे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान में यथासंख्य करके युष्माक और अस्माक आदेश हों जैसे । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः । यहां खञ् और अण् प्रत्यय के परे इस लिये कहा है कि । युष्मदीयः । अस्मदीयः । यहां छ के परे आदेश न हो ॥ ३५७ ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३५८ ॥ अ० । ४ । ३ । ४ ॥

जो एकवचन अर्थात् एक अर्थ को वाचक विभक्ति तथा अण् और खञ् प्रत्यय परे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को तवक और ममक आदेश हों जैसे । तावकीनः । मामकीनः । तावकः । मामकः ॥ ३५८ ॥

कालाट्ठञ् ॥ ३५९ ॥ अ० । ४ । ३ । ११ ॥

शेष अर्थों में काल विशेषवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । मासिकः । आर्द्धमासिकः । सांवत्सरिकः । इत्यादि ॥ ३५९ ॥

श्राद्धे शरदः ॥ ३६० ॥ अ० । ४ । ३ । १२ ॥

जो शेष अर्थों में श्राद्ध अभिधेय रहे तो शरद् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो जैसे । शरदि भवं शारदिकम् । जो श्राद्ध हो नहीं तो । शारदम् । ऋतु वाची के होने से अण् हो जाता है । और यह सूत्र भी अण् का ही अपवाद है ॥ ३६० ॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ ३६१ ॥ अ० । ४ । ३ । १६ ॥

शेष अर्थों में सन्धिवेला आदि गण ऋतु और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे । सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम् । ग्रैष्मम् । शैशिरम् । पौषम् । तैषम् । यह सूत्र सामान्यकालवाची से ठञ् प्राप्त है उस का अपवाद है ॥ ३६१ ॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च * ॥ ३६२ ॥
अ० । ४ । ३ । २३ ॥

* [illegible]

शेष अर्थों में सायं चिरम् प्राह्णे प्रगे और अव्यय प्रातिपदिकों से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुट् का आगम भी हो। दिन का जो अन्त है इस अर्थ में साय शब्द है जैसे। सायेभवं सायंतनम्। चिरन्तनम्। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्। दिवातनम्। इदानींतनम्। अद्यतनम् ॥ ३६२ ॥

वा०—चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः * ॥ ३६३ ॥

चिर परुत् और परारि इन तीन अव्यय प्रातिपदिकों से त्न प्रत्यय होवे जैसे। चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम् ॥ ३६३ ॥

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च ॥ ३६४ ॥

प्रग प्रातिपदिक से वेद में त्न प्रत्यय और गकार का लोप हो जैसे। प्रगेभवं प्रत्नम् ॥ ३६४ ॥

वा०—अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥ ३६५ ॥

अग्र आदि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से डिमच् प्रत्यय हो। डित् करण यहां टि लोप होने के लिये है। जैसे। अग्रे जातोऽग्रिमः। आदौ जात आदिमः। पश्चात् जातः पश्चिमः ॥ ३६५ ॥

वा०—अन्ताच्च ॥ ३६६ ॥

अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय हो जैसे। अन्ते भवोऽन्तिमः ॥ ३६६ ॥

तत्र जातः ३६७ ॥ अ० । ४ । ३ । २५ ॥

घ आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष अर्थों में विधान कर चुके हैं उन से जात आदि अर्थ दिखाये जाते हैं और तत्र इत्यादि समर्थ विभक्ति जाननी चाहिये। समर्थों में प्रथम सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से जो २ प्रत्यय विधान कर चुके हैं सो २ जात आदि अर्थों में होवें जैसे। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। माथुरः। औत्सः। औदपानः। राष्ट्रियः। अवारपारीणः। शाकलिकः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। कार्त्रेयकः। औष्णेयकः। इत्यादि ॥ ३६७ ॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यऽनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽऽषाढाबहुलाल्लुक् ॥ ३६८ ॥ अ० । ४ । ३ । ३४ ॥

जात आदि अर्थों में श्रविष्ठा आदि नक्षत्रवाची शब्दों से विहित तद्धित प्रत्ययों का लुक् हो। श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिष्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। आषाढः। बहुलः † ॥ ३६८ ॥

---

* यहां पूर्व सूत्र से ट्यु ट्युल् प्रत्यय आदि के उन के अनुवाद से वार्त्तिक समझने चाहियें।

† यहां श्रविष्ठा आदि शब्दों से तद्धित प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धित लुकि १ । २ । ४९) इस सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। फिर जो ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हों तो टाप् होता जैसे। श्रविष्ठा।

वा०-लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम् ॥ ३६९ ॥

जात अर्थ स्त्रीअभिधेय हो तो चित्रा रेवती और रोहिणी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होवे जैसे। चित्रायां जाता कन्या चित्रा। रेवती। रोहिणी *॥३६९॥

वा०-फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ ॥ ३७० ॥

पूर्व वार्त्तिक से स्त्रीलिंग की अनुवृत्ति आती है। फल्गुनी और अषाढा नक्षत्रवाची शब्दों से ट और अन् प्रत्यय यथासंख्य करके हों जैसे। फल्गुन्यां जाता कन्या फल्गुनी। अषाढा †॥ ३७० ॥

वा०-श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् ॥ ३७१ ॥

श्रविष्ठा और अषाढा प्रातिपदिकों से छण् प्रत्यय हो जैसे। श्रविष्ठायां जाताः श्राविष्ठीयाः। आषाढीयाः ॥ ३७१ ॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ॥ ३७२ ॥ अ० । ४ । ३ । ३५ ॥

जात अर्थ में स्थानान्त गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से विहित जो तद्धित प्रत्यय उस का लुक् हो जैसे। गोस्थाने जातो गोस्थानः। हस्तिस्थानः। अश्वस्थानः। इत्यादि। गोशालः। खरशालः। यहां तद्धित लुक् होने के पश्चात् शाला शब्द के स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ॥ ३७२ ॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा ‡ ॥३७३॥ अ०। ४। ३।३६॥

जात अर्थ में वत्सशाला आदि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे जैसे। वत्सशालायां जातः। वत्सशालः। वात्सशालः। अभिजित्। आभिजितः। अश्वयुक्। आश्वयुजः। शतभिषक्। शातभिषजः ॥ ३७३ ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७४ ॥ अ० । ४ । ३ । ३७ ॥

अन्य नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो उस का बहुल करके लुक् होवे जैसे। रोहिणः। रौहिणः। मृगशिराः। मार्गशीर्षः। बहुल ग्रहण से कहीं लुक् नहीं भी होता जैसे। तैषः। पौषः। इत्यादि ॥ ३७४ ॥

---

* यहां भी पूर्व के समान स्त्री प्रत्यय का लुक् होके चित्रा शब्द से टाप् और रेवती तथा रोहिणी शब्द का गौरादि गण में पाठ होने से ङीष् प्रत्यय हो जाता है।

† यहां भी जो प्रत्यय का लुक् पूर्ववत् हो के ट प्रत्यय के टित् होने से फल्गुनी शब्द से ङीप् और अषाढा शब्द से टाप् होता है।

‡ इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है क्योंकि वत्स शाला शब्द से किसी सूत्र कर के लुक् नहीं पाता और अभिजित् आदि नक्षत्र वाचियों से बहुल कर के प्राप्त है उस का विकल्प किया है।

षाण्मासिकम् । सांवत्सरिकम् । इत्यादि यहां ष्णप् ग्रहण इस लिये
हुसै देयं भोजनम् । यहां प्रत्यय न हो ॥ ३८१ ॥

व्याहरति मृगः ॥ ३८२ ॥ अ॰ । ४ । ३ । ५१ ॥

रति क्रिया का मृग कर्त्ता वाच्य रहे तो सप्तमी समर्थ कालवाची प्राति-
हि जिस २ से जो २ प्रत्यय विधान किया हो वही २ होवे जैसे । निशायां
मृगः । नैशिको नैशः । प्रादोषिकः । प्रादोषः * । सायंतनः । इत्यादि ॥ ३८२ ॥

तदस्य सोढम् † ॥ ३८३ ॥ अ॰ । ४ । ३ । ५२ ॥

ष्ठी के अर्थ में सोढ समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों
विहित प्रत्यय हों जैसे । निशाऽध्ययनं सोढमस्य छात्रस्य नैशो नैशिकः ।
यः । प्रादोषिकः । वसन्तः । हेमन्तसहचरितं शीतं सोढमस्य हैमन्तः ।
ादि ॥ ३८३ ॥

तत्र भवः ॥ ३३४ ॥ अ॰ । ४ । ३ । ५३ ॥

यहां पूर्व सूत्र से हो तत्र ग्रहण की अनुवृत्ति चली आती फिर तत्र ग्रहण
रने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे । तत्र अर्थात्
हो हुआ होता वा होगा इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित
त्यय हों जैसे । स्रुघ्ने भवः । स्रौघ्नः । अग्रपतौ भव आग्रपतः । पौसः ।
दिस्यः । पार्दित्यः । पृथिव्यां भवः पार्थिवः । वामन्यत्यः । शैवः । पौरः । माथुरः ।
राष्ट्रियः । इत्यादि ॥ ३८४ ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥ ३८५ ॥ अ॰ । ४ ॥ ३ । ५४ ॥

भवार्थ में सप्तमीसमर्थ दिश् आदि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । दिशि भवं
दिश्यम् । वर्ग्यम् । पूग्यम् । इत्यादि यह सूत्र अण् का बाधक है ॥ ३८५ ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ३८६ ॥ अ॰ । ४ । ३ । ५५ ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय आदि प्रातिपदिकों से भवार्थ में यत् प्रत्यय हो जैसे ।
तालुनि भवं तालव्यम् । दन्त्यम् । ओष्ठ्यम् । हृद्यम् । नाभ्यम् । चक्षुष्यम् । नासिक्य-
र् । पायव्यम् । उपस्थ्यम् । इत्यादि ॥ ३८६ ॥

अव्ययीभावाच्च ॥ ३८७ ॥ ४ । ३ । ५६ ॥

* यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च । ४ । ३ । १४) इस पूर्व लिखित सूत्र से ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है ।
† इस सूत्र में ब्रह्मचारी उपाधि की जाती है । क्योंकि काल का सहना क्या है तब काल में भी विशेष कर
के जो उस का सहना ठीक है जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष को सब सहे वह हैमन्त कहावे ॥

सप्तमी समर्थ अव्ययीभाव संज्ञक प्रातिपदिकों से भवार्थ में ञ्य प्रत्यय हो। ३८

वा०- ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ३८८ ॥

सूत्र में जो अव्ययीभाव प्रातिपदिकों का ग्रहण है उस का नियम इस वार्तिक से किया है कि परिमुखादि अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ही ञ्य प्रत्यय जैसे। परिमुखं भवं पारिमुख्यम्। पार्श्वोष्ठम्। पारिहनव्यम्। यहां परिमुखादि का परिगणन इस लिये है कि। उपकूलं भव औपकूलः। औपशालः। यहां ञ्य प्रत्यय न होवे ॥ ३८८ ॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ॥ ३८९ ॥ अ० । ४ । ३ । ६० ॥

पूर्व वार्त्तिक से परिमुखादि का नियम होने से अण् प्राप्त है उस का बाधक यह सूत्र है। अन्तर् शब्द जिन के पूर्व हो ऐसे अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो भव अर्थ में जैसे। अन्तर्वेश्मनि भवमान्तर्वेश्मिकम्। आन्तःपुरिकम्। आन्तर्गेहिकम्। इत्यादि ॥ ३८९ ॥

का०-समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च ॥ ३९० ॥

समान शब्द से और समान शब्द जिनके आदि में हो उन प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। समाने भवः सामानिकः। तदादि से। सामानग्रामिकः। सामानदेशिकः। तथा अध्यात्मादि प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय होना चाहिये जैसे। अध्यात्मनि भवमाध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। अध्यात्म ऊर्ध्वम् शब्द जिन के पूर्व हो ऐसे दम और देह प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो जैसे। ऊर्ध्वंदमे भवमौर्ध्वंदमिकम्। और्ध्वंदेहिकम्। और लोक शब्द जिन के उत्तर पद में हो उन प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय हो जैसे। इहलोके भवमैहलौकिकम्। पारलौकिकम्। अधिदेव। अधिभूत। इहलोक और परलोक ये चार शब्द अनुशतिकादि गण में पढ़े हैं इस से उभयपदवृद्धि होती है ॥ ३९० ॥

का०-मुखपार्श्वतसोरीयः कुगजनस्य परस्य च।
ईयः कार्य्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा ॥ ३९१ ॥

तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्श्व प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होवे। इस वे काल में ईय आदेश हो जाता फिर ईय पाठ पूर्ण होने के लिये कहा है जैसे। मुखतो भवं मुखतीयम्। पार्श्वतीयम् *। जन और पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय और प्रातिपदिकों को कुक् का आगम भी होवे जैसे। जने भवो जनकीयः।

---

* यहां अकार के होने से [illegible]

परकीयः । मध्य प्रातिपदिक से ईय मण् और मीय प्रत्यय होवें जैसे। मध्ये भवो मध्योयः । माध्यमः । मध्यमीयः ० ॥ ३८१ ॥

का०-मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा।
बाह्यो दैव्यः पांचजन्योऽथ गम्भीराज्ञ्य इष्यते ॥ ३८२ ॥

मध्य शब्द को मध्यम् ऐसा मकारान्त आदेश और उस से दिनण् प्रत्यय हो जैसे। माध्यन्दिनउपगायति । स्थामन् और अजिन शब्द जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो जैसे। अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा। इस शब्द में पृषोदरादि से सकार को तकार हो जाता है। अजिनान्त से। क्रष्णाजिने भवः क्रष्णाजिनः । उष्ट्राजिनः । सिंहाजिनः । व्याघ्राजिनः । इत्यादि जैसे गम्भीर शब्द से ञ्य प्रत्यय होता है वैसे बाह्य दैव्य और पांचजन्य इन तीन शब्दों में भी ञ्य जानो । बहिस् शब्द के टि भाग का लोप हो जाता है॥ ३८२॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ३८३ ॥ अ० । ४ । ३ । ६२ ॥

यह शरीरावयव से यत् प्राप्त है उस का बाधक है । भवार्थ में जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो जैसे। जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयं स्थानम् । अङ्गुलीयः ॥ ३८३ ॥

वर्गान्ताच्च ॥ ३८४ ॥ अ० । ४ । ३ । ६३ ॥

भवार्थ में वर्गान्त प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो । कवर्गे भवो वर्णः कवर्गीयः । चवर्गीयः । पवर्गीयः । इत्यादि ॥ ३८४

तस्य व्याख्यानइति च व्याख्यातव्यानाम्नः ॥ ३८५ ॥
अ० । ४ । ३ । ६६ ॥

षष्ठी और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः। सुपां व्याख्यानो ग्रन्थःसौपः। तैङः। साहितः। सुप्सु भवं सौपम् । तैङम् । कार्तम् । यहां व्याख्यातव्यनाम ग्रहण इस लिये है कि । पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम् । यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३८५॥

* कदादि गण में पठित अङ्ग शब्द के स्थान में अध्यम आदेश और छ प्रत्यय होके भी मध्यमीय शब्द बन जा है इससे अर्थ भेद नहीं शब्द भेद तो नहीं है।

प्रातिपदिकों से भी पर विप्रतिषेध मान के ढ प्रत्यय को बाध के ठञ् ही होता है। जैसे। मातुरागतं मातृकम्। इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पितुर्यच्च ॥ ४०२ ॥ अ० । ४ । ३ । ७९ ॥

आगत अर्थ में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठञ् प्रत्यय हो जैसे। पितुरागतं पित्र्यम्। पैतृकम् ॥ ४०२ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ४०३ ॥ अ० । ४ । ३ । ८० ॥

गोत्र प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे अङ्क अर्थ में औपगवानामङ्कः। औपगवकः। कापटवकः। नाडायनकः। चारायणकः। इत्यादि में वुञ् प्रत्यय होता है वैसे हो। औपगवेभ्य आगतम्। औपगवकम्। कापटवकम्। नाडायनकम्। चारायणकम्। इत्यादि में भी वुञ् होवे ॥ ४०३ ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥ ४०४ ॥ अ० । ४ । ३ । ८१ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो जैसे। गोभ्यो हेतुभ्य आगतम्। गोरूप्यम्। पक्ष में गव्यम्। समादागतं समरूप्यम्। समीयम्। विषमरूप्यम्। विषमीयम्। मनुष्य। देवदत्तरूप्यम्। देवदत्तीयम्। दैवदत्तम्। यज्ञदत्तरूप्यम्। यज्ञदत्तीयम्। याज्ञदत्तम् ॥ ४०४ ॥

मयट् च ॥ ४०५ ॥ अ० । ४ । ३ । ८२ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मयट् प्रत्यय हो जैसे। सममयम्। विषममयम्। देवदत्तमयम्। वायुदत्तमयम्। टकारलोप होने के लिये है। सममयी ॥ ४०५ ॥

प्रभवति ॥ ४०६ ॥ अ० । ४ । ३ । ८३ ॥

उससे जो उत्पन्न होता है इस अर्थ में पंचमीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। हिमवतः प्रभवति। हैमवती गंगा। दारदी सिन्धुः ॥ ४०६ ॥

विदूराञ्ञ्यः ॥ ४०७ ॥ अ० । ४ । ३ । ८४ ॥

पूर्वोक्त अर्थ में विदूर प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो जैसे। विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः ॥ ४०७ ॥

का०—वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा ।
न वै तत्रेति चेद् ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत् ॥ ४०८ ॥

वह इस का निवासस्थान है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । स्रुघ्नो निवासोऽस्य पुरुषस्य स स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । वाराणसी निवासोऽस्य वाराणसेयः । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥ ४१२ ॥

अभिजनश्च * ॥ ४१३ ॥ अ० । ४ । ३ । ९० ॥

वह इस का उत्पत्तिस्थान है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥ ४१३ ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ४१४ ॥ अ० । ४ । ३ । ९१ ॥

आयुध जीवि अर्थात् शस्त्रास्त्र विद्या से जीविका करने हारे वाच्य रहें तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे । हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां ते हृद्गोलीया आयुधजीविनः । रैवतकीयाः । वालवायीयाः । इत्यादि । यहां आयुध जीवियों का ग्रहण इस लिये है कि । ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनमेषामार्क्षोदा ब्राह्मणाः । और पर्वत ग्रहण इस लिये है कि । साङ्काश्यमभिजनमेषां ते साङ्काश्यका आयुधजीविनः । यहां छ प्रत्यय न होवे ॥ ४१४ ॥

भक्तिः ॥ ४१५ ॥ अ० । ४ । ३ । ९५ ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामिकः । ग्राम्यः । ग्रामीणः । राष्ट्रियः । माथुरः । इत्यादि ॥ ४१५ ॥

अचित्ताद्देशकालाट्ठक् ॥ ४१६ ॥ अ० । ४ । ३ । ९६ ॥

वह इस का सेवनीय है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ जो देश और काल को छोड़ के अचेतन वाची प्रातिपदिक हैं उन से ठक् प्रत्यय हो जैसे । अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः । शाष्कुलिकः । पायसिकः । साक्तुकः । यहां अचित्त ग्रहण इस लिये है कि । दैवदत्तः । अदेश इस लिये है कि । स्रौघ्नः । और अकाल इस लिये है कि । ग्रैष्मः । यहां भी ठक् न हो ॥ ४१६ ॥

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ ४१७ ॥ अ० । ४ । ३ । १०० ॥

---

* निवास और अभिजन में इतना भेद है कि जहां वर्त्तमान काल में रहते हों उस को निवास और जहां पिता दादे आदि पुरुष के पुरुष रहे हों उस को अभिजन कहते हैं ।

बहुवचन में जनपद नाम देशवाची शब्दों के तुल्य जो जनपदि अर्थात् देश के स्वामी क्षत्रिय वाचीशब्द हैं उन को जनपदवत् नाम (जनपदतदवध्योश्च) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं वे ही प्रत्यय भक्ति समानाधिकरण उन क्षत्रिय वाची शब्दों से यहां होवें जैसे । अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य स आङ्गक: । वाङ्गक: । सौह्मक: । इत्यादि जनपदी क्षत्रियों का ग्रहण इस लिये है कि । पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य स पाञ्चाल: । यहां वुञ् न हो । सर्व शब्द का ग्रहण इस लिये है कि प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे जैसे । मद्राणां क्षत्रियाणां राजा माद्र: । वार्ज्य: । माद्रो भक्तिरस्य स मद्रक: । वृजिक: (मद्रवृज्यो: कन्) इस से कन् प्रत्यय प्रकृति को तुल्य होने से होता है ॥ ४१७ ॥

तेन प्रोक्तम् ॥ ४१८ ॥ अ० । ४ । ३ । १०१ ॥

उस ने जो कहा इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । उक्षेन प्रोक्तमौक्षम् । दैत्यम् । आदित्यम् । प्रजापतिना प्रोक्तं प्राजापत्यम् । स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम् । पौंस्नम् । पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणम् । पाणिनीयम् । काशकृत्स्नम् । काणादम् । गौतमम् । इत्यादि ॥ ४१८ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ४१९ ॥ अ० । ४ । ३ । १०५ ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्पग्रन्थ हों तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से णिनि प्रत्यय हो । पुराणेन चिरंतनेन मुनिना भल्लुना प्रोक्ता भाल्लविन: । शाट्यायनिन: । ऐतरेयिण: । कल्पों में । पैङ्गी कल्प: । आरुणपराजी कल्प: । इत्यादि ॥ ४१९ ॥

वा०-याज्ञवल्क्यादिभ्य: प्रतिषेध: ॥ ४२० ॥

याज्ञवल्क्यादि शब्दों से णिनि प्रत्यय न होवे । पुराण प्रोक्त होने से प्राप्त है । याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्कानि । सौलभानि । इत्यादि । यहां अण् प्रत्यय होता है । काशिकाकार जयादित्य आदि लोग इस को नहीं समझे । इसी लिये यह लिखा है कि याज्ञवल्क्यादि ब्राह्मपुराण प्रोक्त नहीं किन्तु थोड़े काल के हैं सो महाभाष्य से विरुद्ध होने से मिथ्या समझना चाहिये ॥ ४२० ॥

तेनैकदिक् ॥ ४२१ ॥ अ० । ४ । ३ । ११२ ॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । सुदाम्नैकदिक् सौदामनी विद्युत् । हिमवतैकदिक् हैमवती । इत्यादि ॥ ४२१ ॥

तसिश्च ॥ ४२२ ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११३ ॥

एकदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय भी हो । तसि प्रत्यय की अव्यय संज्ञा जाननी स्वरादि गण में पाठ होने से । मासिकया एकदिक् मासिकातः । सुदामतः । हिमवत्तः । पीलुमूलतः । इत्यादि ॥ ४२२ ॥

उरसो यच्च ॥ ४२३ ॥ अ० । ४ । ३ । ११४ ॥

तेनैकदिक् इस विषय में उरस् प्रातिपदिक से यत् और चकार से तसि प्रत्यय भी हो जैसे । उरसा एकदिक् उरस्यः । उरस्तः ॥ ४२३ ॥

उपज्ञाते ॥ ४२४ ॥ अ० । ४ । ३ । ११५ ॥

उपज्ञातं अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम् । पातञ्जलं योगशास्त्रम् । काशकृत्स्नम् । गुरुलाघवम् । आपिशलम् । जो अपने आप जाना जाय उस को उपज्ञात कहते अर्थात् विद्यमान वस्तु को जानना चाहिये ॥ ४२४ ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ४२५ ॥ अ० । ४ । ३ । ११६ ॥

जो किया जावे सो ग्रंथ होवे तो इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । वररुचिना कृताः । वाररुचाः श्लोकाः । मानवो ग्रन्थः । भार्गवो ग्रन्थः । यहां ग्रंथ ग्रहण इस लिये है कि । कुलालकृतो घटः । यहां प्रत्यय न हो ॥ ४२५ ॥

तस्येदम् ॥ ४२६ ॥ अ० । ४ । ३ । १२० ॥

उस का यह है इस अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे । वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः । राज्ञः कुमारी राजकीया । राजकीयो भृत्यः । यहां (राज्ञःकच) इस से ककारादेश हो जाता है । उपगोरिदम् । औपगवम् । कापटवम् । राष्ट्रियम् । अवारपारीणम् । देवस्येदम् । दैवम् । दिव्यम् । इत्यादि ॥ ४२६ ॥

वा०—वहेस्तुरणिट् च ॥ ४२७ ॥

तृच् प्रत्ययान्त वह धातु से अण् प्रत्यय और प्रत्यय को इट् का आगम भी हो जैसे । संवोढुः । स्वं सांवहित्रम् ॥ ४२७ ॥

वा०—अग्नीधः शरणे रञ् भं च ॥ ४२८ ॥

गरण नाम घर अर्थ में अग्नीध् प्रातिपदिक से रञ् प्रत्यय और प्रत्यय के पूर्व की भसंज्ञा भी जाननी चाहिये जैसे । अग्नीधःशरणम् । आग्नीध्रम् ॥४२८॥

वा०–समिधामाधाने षेण्यण् ॥ ४२९ ॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान षष्ठी का अर्थ होवे तो षेण्यण् प्रत्यय होवे षित् करण ङीष् प्रत्यय होने के लिये है । सामिधेन्यो मंत्रः । सामिधेनीऋक् ॥४२९॥

द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥ ४३० ॥ अ० । ४ । ३ । १२३ ॥

जिन २ का परस्पर वैर और योनिसम्बन्ध हो उन के वाची द्वन्द्व समास किये प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय हो स्वार्थ में । वैरद्वन्द्व से । अहिनकुलिका । इह प्रातिपदिकों से भी परत्व से वुन् होता है । काकोलूकिका । श्वावराहि का । मैथुनिकद्वन्द्व से । गर्गकुशिकिका । अत्रिभरद्वाजिका । इत्यादि यहां लिङ्गानुशासन की रीति से नित्य स्त्रीलिंग होता है ॥ ४३० ॥

वा०–वैरेदेवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४३१ ॥

वैर अर्थ में देवासुर आदि प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय न हो किन्तु अण् ही होवे जैसे । दैवासुरम् । राक्षोऽसुरम् । इत्यादि ॥ ४३१ ॥

गोत्रचरणाद्वुञ् ॥ ४३२ ॥ अ० । ४ । ३ । १२४ ॥

गोत्र वाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होवे ॥ ४३२ ॥

वा०–चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥ ४३३ ॥

गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरणवाचियों से धर्म तथा आम्नाय विशेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय समझो जैसे गोत्र से । ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनकम् । इह प्रातिपतिपदिकों से भी परत्व से वुञ् ही होता है जैसे । गार्गकम् वात्सकम् । इत्यादि । चरण वाचियों से । कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम् । मौदकम् । पैप्पलादकम् । कालापकम् । इत्यादि । अधिकार होने से अण् पाता है उस का यह बाधक है ॥ ४३३ ॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ ४३४ ॥
अ० । ४ । ३ । १२५ ॥

पूर्व सूत्र से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है । अञन्त यञन्त और इञन्त षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थों में अण् प्रत्यय

होवे जैसे । विदानां संघोऽङ्को लक्षणं वा बैदः । और्वः । यञन्त से । गार्ग्याणां संघोऽङ्को लक्षणं वा गार्गः । वात्सः । इञन्त से । दाक्षः । प्लाक्षः ॥ ४२४ ॥

वा०-सङ्घादिषु घोषग्रहणम् ॥ ४२५ ॥

सङ्घ आदि अर्थों में जो प्रत्यय कहे हैं वे घोष अर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवें जैसे । गार्गो घोषः । वात्सो घोषः । दाक्षः प्लाक्षो वा इत्यादि ॥ ४२५ ॥

शकलाद्वा ॥ ४२६ ॥ अ० । ४ । ३ । १२६ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इस लिये समझना चाहिये कि शकल शब्द गर्गादि गण में पढ़ा है उस के यञन्त होने से पूर्व सूत्र से नित्य अण् प्राप्त है उस का विकल्प किया है । षष्ठीसमर्थ गोत्र प्रत्ययान्त शकल प्रातिपदिक से विकल्प करके अण् प्रत्यय होवे और पक्ष में गोत्रवाची से वुञ् समझना चाहिये । शाकल्यस्य संघोऽङ्को लक्षणं घोषो वेति शाकलः । शाकलकः । इस सूत्र पर काशिका और सिद्धान्तकौमुदी रचने और पढ़ने वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिये । वे लोग शकल शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् करके इस शाकल शब्द को चरणवाची मानते और संघादि अर्थों में विकल्प करके प्रत्यय करते हैं सो यह उन लोगों का अर्थ मिथ्या है क्योंकि जो (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शाकल प्रातिपदिक चरणवाची हुआ फिर उस से संघादि अर्थों में कैसे प्रत्यय होगा यह कथन पूर्वापर विरुद्ध है क्योंकि चरणवाचियों से धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय कहे हैं । और महाभाष्य से भी विरुद्ध है महाभाष्यकार पतंजलि मुनि बहुत स्थलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल लिखते हैं फिर चरणवाची होगा तो लक्षण अर्थ में शाकल्य शब्द से कौन प्रत्यय हो सकेगा ॥ ४२६ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ ४२७ ॥

यहां गोत्र वाचियों से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है । रैवतिकादि प्रातिपदिकों से संबन्ध सामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे । रैवतिकानामयं सङ्घोऽङ्को घोषो वा रैवतिकीयः । स्वापिशीयः । क्षैमवृद्धीयः । इत्यादि ॥ ४२७ ॥

वा०-कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ॥ ४२८ ॥

यहां भी गोत्र प्रत्ययान्तों से वुञ् प्राप्त है उस का बाधक यह वार्त्तिक है । कौपिञ्जल और हास्तिपद प्रातिपदिकों से संबंध सामान्य अर्थ में अण् प्रत्यय होवे जैसे । कौपिञ्जलस्यायं सङ्घः कौपिञ्जलः । हास्तिपदः ॥ ४२८ ॥

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च * ॥ ४३९ ॥

पूर्व वार्त्तिक से अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति चली आती है। आथर्वणिक शब्द से धर्म तथा आम्नाय अर्थ में अण् प्रत्यय और उस के इक भाग का लोप होवे। आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो वा आथर्वणः ॥ ४३९ ॥

तस्य विकारः † ॥ ४४० ॥ अ० । ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। अश्मनो विकार आश्मनः। आश्मः। भस्मनो विकारो भास्मनः। भास्मः। मार्त्तिकः। वनस्पतेर्विकारो दण्डो वानस्पत्यः। इत्यादि ॥ ४४० ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ‡ ॥ ४४१ ॥ अ० । ४ । ३ । १३५ ॥

विकार और अवयव अर्थ में प्राणी ओषधी और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों परन्तु प्राणी शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ् कहेंगे। जैसे। कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः। मायूरः। तैत्तिरः। ओषधिवाची। मलट्टस्य विकारोऽवयवो वा मालट्टम्। देवदारवम्। निर्गुण्ड्या विकारोऽवयवो वा नैर्गुण्डम्। वृक्षवाची। खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्। बार्बुरम्। कारीराम्रम्। कारीरं भस्म। इत्यादि ॥ ४४१ ॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ ४४२ ॥ अ० । ४ । ३ । १४३ ॥

विकार और अवयव अर्थ में लौकिक प्रयोग विषयक प्रकृतिमात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प करके हो भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़ के। अश्ममयम्। आश्मनम्। मूर्वामयम्। मौर्वम्। वनस्पतेर्विकारो वनस्पतिमयम्। वानस्पत्यम्। यहां भाष्य

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

ग्रहण इस लिये है कि बैल्व: । खादिरो वा यूप: स्यात् । यहां मयट् न हो और अभक्ष्याच्छादन ग्रहण इस लिये है कि । मौद्ग: सूप: । कार्पासमाच्छादनम् । यहां भी मयट् न होवे ॥ ४४२ ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्य: ॥ ४४३ ॥ अ० ४ । ३ । १३८ ॥

यहां नित्य ग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है । भक्ष्य और आच्छादन-रहित विकार और अवयव अर्थ हों तो षष्ठीसमर्थ वृद्ध संज्ञक और शरादिगण प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोगों में मयट् प्रत्यय नित्य ही होवे जैसे । आम्रस्य विकारोऽवयवो वा—आम्रमयम् । शालमयम् । शाकमयम् । तालमयम् । इत्यादि यहां वृद्ध प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय प्राप्त है उस का बाधक मयट् है । शरादि । शरमयम् । दर्भमयम् । इत्यादि ॥ ४४३ ॥

जातरूपेभ्य: परिमाणे ॥ ४४४ ॥ अ० । ४ । ३ । १४९ ॥

जातरूप शब्द सुवर्ण का पर्यायवाची है बहुवचन निर्देश से सुवर्ण वाचकों का ग्रहण होता है । परिमाण विकार अर्थ होवे तो सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । अष्टापदस्य विकार आष्टापदम् । जातरूपम् । सौवर्णम् । रौक्मम् । इत्यादि यहां परिमाण ग्रहण इस लिये है कि । सुवर्णमय: प्रासाद: । यहां अण् प्रत्यय न हो । यह मयट् का अपवाद है ॥ ४४४ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ ४४५ ॥ अ० । ४ । ३ । १५० ॥

यह अण् का अपवाद है । षष्ठीसमर्थ प्राणिवाची और रजतादि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो विकार और अवयव अर्थों में । प्राणी । कपोतस्य विकार: कापोतम् । मायूरम् । तैत्तिरम् । रजतादि । राजतम् । सैसम् । लौहम् । इत्यादि ॥ ४४५ ॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥ ४४६ ॥ अ० । ४ । ३ । १५२ ॥

जिस २ परिमाणवाची प्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में जो २ प्रत्यय होता है उसी २ प्रातिपदिक से वही २ प्रत्यय यहां विकार अवयव अर्थ में होवे जैसे । निष्केण क्रीतम् । नैष्किकम् । होता है वैसे ही । निष्कस्य विकारो नैष्किक: । शत्य: । शतिक: । द्विनिष्क: । द्विनैष्किक: । इत्यादि ॥ ४४६ ॥

फले लुक् ॥ ४४७ ॥ अ० । ४ । ३ । १५९ ॥

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ ४५३ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे कहने अर्थ में जैसे । भूतमाह प्राभूतिकः । पार्य्याप्तिकः । इत्यादि ॥ ४५३ ॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितीयासमर्थ सुस्नातादि प्रातिपदिकों से पूछने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। स्नातं पृच्छति सौस्नातिकः । सौखरात्रिकः । सुखशयनं पृच्छति सौखशयनि-कः । इत्यादि ॥ ४५४ ॥

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ ४५५ ॥

द्वितीयासमर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । परदारान् गच्छति पारदारिकः । गौरुतल्पिकः । इत्यादि ॥ ४५५ ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् * ॥ ४५६ ॥ अ० । ४ । ४ । २ ॥

दीव्यति आदि क्रियाओं के कर्त्ता वाच्य रहें तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । अक्षैर्दीव्यति—आक्षिकः । कुद्दालेन खनति कौद्दालि-कः । शलाकाभिर्जयति शालाकिकः । शलाकाभिर्जितं शालाकिकं धनम् । इत्यादि ॥ ४५६ ॥

संस्कृतम् ॥ ४५७ ॥ अ० । ४ । ४ । ३ ॥

संस्कार करने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। घृतेन संस्कृतं घार्त्तिकम् । तैलिकम् । दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । ताक्रिकम् । इत्यादि ॥ ४५७ ॥

तरति ॥ ४५८ ॥ अ० । ४ । ४ । ५ ॥

तरने अर्थ में तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । इसमेव तरति सार्वभिकः । माद्विपिकः । औडुपिकः । इत्यादि ॥ ४५८ ॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ४५९ ॥ अ० । ४ । ४ । ७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है उस का अपवाद ठन् किया है । तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ नौ और द्व्यच् प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होवे जैसे । नावा तरति। नाविकः । घटेन तरति घटिकः । बौधिकः । बाहुकः । इत्यादि ॥ ४५९ ॥

चरति ॥ ४६० ॥ अ० । ४ । ४ । ८ ॥

* यहां जिस शब्द का ग्रहण करना रह लिखे हैं कि जिस धातु का कर्म अविवक्षित हो तो भी ठक् प्रत्यय होता है।

चरने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। शकटेन चरति शाकटिकः। रथिकः। हास्तिकः। इत्यादि ॥ ४६० ॥

आकर्षात्ष्ठल् ॥ ४६१ ॥ अ० । ४ । ४ । ९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है उस का अपवाद है। चरने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से ष्ठल् प्रत्यय होवे। षित् करण स्त्रीलिंग में ङीष् होने के लिये है। आकर्षेण चरति आकर्षिकः। आकर्षिकी ॥ ४६१ ॥

का०-* आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च। आवसथात्किसरादेः षितः षडेते टगधिकारे ॥ ४६२ ॥

यह आर्या छन्द है। आकर्ष शब्द से ष्ठल्। पर्पादिकों से ष्ठन्। भस्त्रादिकों से ष्ठन्। कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से ष्ठन् और ष्ठच् आवसथ शब्द से ष्ठल् और किसरादि प्रातिपदिकों से ष्ठन् ये छः प्रत्यय इस अधिकार में षित् हैं ॥ ४६२ ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ॥ ४६३ ॥ अ० । ४ । ४ । १२ ॥

जीवने अर्थ में तृतीयासमर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। वेतनेन जीवति वैतनिकः। वाहिकः। वेशेन जीवति वैशिकः। उपदेशेन जीवति औपदेशिकः। उपस्थेन जीवति औपस्थिकः। औपस्थिकी गणिका ॥ ४६३ ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ ४६४ ॥ अ० । ४ । ४ । १५ ॥

हरने अर्थ में उत्सङ्गादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः। औडुपिकः। इत्यादि ॥ ४६४ ॥

विभाषा विवधात् ॥ ४६५ ॥ अ० । ४ । ४ । १७ ॥

इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा इस लिये है कि ष्ठन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। हरने अर्थ में तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे पक्ष में ठक् हो जैसे। विवधेन हरति विवधिकः। विवधिकी। वैवधिकः। वैवधिकी ॥ ४६५ ॥

वा०-वीवधाच्च ॥ ४६६ ॥

वीवध प्रातिपदिक से भी हरने अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। वीवधेन हरति वीवधिकः। वीवधिकी। वैवधिकः। वैवधिकी। इस वीवध शब्द को

* यहां ठक् प्रत्यय के अधिकार में जिन्हीं प्रातिपदिकों से विहित है उन्हीं को संहिता में षत् होजाता है और किन्हीं प्रत्ययों में ङीष् होने के लिये षित् किया है। इस से संदेह होता है कि किन प्रत्ययों में षित् है और किन में विहित का है इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह कारिका है।

काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है। सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है। और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं। शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है इस से प्राप्त नहीं था ॥ ४६६ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ अ० । ४ । ४ । १९ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतिकम्। कण्टकमर्दनिकम्। इत्यादि ॥ ४६७ ॥

त्रेर्मम्नित्यम् ॥ ४६८ ॥ अ० । ४ । ४ । २० ॥

क्त्रि प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होवे। अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है सो भी न रहे जैसे। पक्त्रिमा यवागूः। उप्त्रिमं बीजम्। कृत्रिमः संसारः। इत्यादि ॥ ४६८ ॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमप्वक्तव्यः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय करना चाहिये। ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है क्यों कि (कुट्टिमा भूमिः) (सेकिमोऽसिः)। इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥ ४६९ ॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ अ० । ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। दध्ना संसृष्टं दाधिकम्। शाकिकम्। मारिचिकम्। शार्ङ्गवेरिकम्। पैप्पलिकम्। दौग्धिकी यवागूः। गौडिका गोधूमाः। इत्यादि ॥ ४७० ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ अ० । ४ । ४ । २६ ॥

उपसिक्त अर्थात् सींचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। दध्नोपसिक्तं दाधिकम्। शाकिकम्। गौडिकम्। पायसिकम्। मारिचिकम्। इत्यादि व्यंजनवाचियों का ग्रहण इस लिये है कि उदकेनोपसिक्तं शाकम्। यहां प्रत्यय न हो ॥ ४७१ ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥ अ० । ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिन के पूर्व हों ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः। आन्वीपिकः। प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः ॥ ४७२ ॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ४७३ ॥ अ० । ४ । ४ । ३० ॥

प्रयच्छति अर्थात् देने अर्थ में जो पदार्थ दियाजाय सो निन्दित होतो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७३ ॥

वा०–मेस्याल्लोपोवा ॥ ४७४ ॥

प्रत्यय उत्पन्न होते समय (मे) (स्यात्) इन दो पदों का विकल्प करके लोप होजावे। विकल्प इस लिये है कि वाक्य भी बना रहे जैसे। द्विगुणं मेस्यादिति प्रयच्छति द्वैगुणिकः। मैगुणिकः ॥ ४७४ ॥

वृद्धेर्वृधुषिभावः ॥ ४७५ ॥

यहां मेस्यात् इन दो पदों की अनुवृत्ति चली आती है वृद्धि शब्द को वृधुषि आदेश और ठक्प्रत्यय होवे जैसे। वृद्धिर्मेस्यादिति धनं प्रयच्छति वार्धुषिकः ॥४७५॥

उञ्छति ॥ ४७६ ॥ अ० । ४ । ४ । ३२ ॥

उञ्छने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। बदराण्युञ्छति बादरिकः। श्यामाकिकः। गोधूमानुञ्छति गौधूमिकः। काणिकः। इत्यादि ॥ ४७६ ॥

रक्षति ॥ ४७७ ॥ अ० । ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षा अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। ग्रामं रक्षति ग्रामिकः। समाजं रक्षति सामाजिकः। गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः। कुटुम्बं रक्षति कौटुम्बिकः। नगरं रक्षति नागरिकः। इत्यादि ॥ ४७७ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ४७८ ॥ अ० । ४ । ४ । ३५ ॥

मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ पक्षि मत्स्य और मृगवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः। खैचरिकः। शाकुनिकः। शकुन् हन्ति शौकिकः। वाकिकः। मायूरिकः। तैत्तिरिकः। मत्स्य। मात्स्यिकः। मैनिकः। शाफरिकः। शाकुलिकः। मृग। मार्गिकः। हारिणिकः। सौकरिकः। सारंगिकः * ॥ ४७८ ॥

---

* यहां शब्दों के अर्थ का ग्रहण इस लिये नहीं होता कि [illegible] इस पर वार्तिक पढ़ा है कि ऐसा ग्रहण करना चाहिये जिससे पक्षी अर्थ और मत्स्य इन के पर्यायवाची और विशेष वाचकों का भी ग्रहण हो जावे।

परिपन्थञ्च तिष्ठति ॥ ४७९ ॥ अ० । ४ । ४ । ३६ ॥

स्थिति और मार ने अर्थ में द्वितीयासमर्थ परिपन्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिको दस्युः । परिपन्थ हन्ति पारिपन्थिक उत्कोचकः ॥ ४७९ ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥ ४८० ॥ अ० । ४ । ४ । ३७ ॥

इस सूत्र में माथ शब्द मार्ग का पर्यायवाची है । दौड़ने और शीघ्र गमन प्राप्ति अर्थों में पदवी अनुपद और माथ शब्द जिनके उत्तरपद में हो ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः । धार्ममाथिकः । दाण्डमाथिकः । इत्यादि । पदवीं धावति पादविकः । आनुपदिकः ॥ ४८० ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ४८१ ॥ अ० । ४ । ४ । ३९ ॥

ग्रहण करने अर्थ में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हो उन द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः । इत्यादि ॥ ४८१ ॥

धर्मं चरति ॥ ४८२ ॥ अ० । ४ । ४ । ४१ ॥

आचरण अर्थ में द्वितीयासमर्थ धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । धर्मं चरति धार्मिकः ॥ ४८२ ॥

वा०—अधर्माच्च ॥ ४८३ ॥

आचरण अर्थ में अधर्म शब्द से भी ठक् हो जैसे । अधर्मं चरति आधर्मिकः ॥ ४८३ ॥

समवायान् समवैति ॥ ४८४ ॥ अ० । ४ । ४ । ४३ ॥

यहां बहुवचन निर्देश से समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है । प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । समवायान् समवैति । सामवायिकः । सामाजिकः । सामूहिकः । साङ्घिकः । इत्यादि ॥ ४८४ ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥ ४८५ ॥ अ० । ४ । ४ । ४६ ॥

देखने अर्थ में संज्ञा वाच्य रहै तो द्वितीयासमर्थ ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । ललाटं पश्यति लालाटिको भृत्यः * । कुक्कुटीं पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुकः ॥ ४८५ ॥

* लालाटिक उस सेवक को कहते हैं कि जो कामकाज काम न करै वैसा ? मालिक का मुख देखा करै ।

तस्य धर्म्यम् ॥ ४८६ ॥ अ० । ४ । ४ । ४७ ॥

जो कार्य धर्म का विरोधी न हो उस को धर्म्य कहते हैं। षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से धर्म्य अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे। हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम्। पाकरिकम्। आपणिकम्। इत्यादि ॥ ४८६ ॥

ऋतोऽञ् ॥ ४८७ ॥ अ० । ४ । ४ । ४८ ॥

धर्म्य अर्थ में षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे। होतुर्धर्म्यं हौत्रम्। पौत्रम्। दौहित्रम्। स्वास्रम्। इत्यादि ॥ ४८७ ॥

वा०— * नृनराभ्यामञ्वचनम् ॥ ४८८ ॥

नृ और नर शब्दों से भी अञ् प्रत्यय होवे जैसे। नुर्धर्म्या नारी। एवं नरस्यापि नारी ॥ ४८८ ॥

वा०—विशसितुरिड्लोपश्च ॥ ४८९ ॥

विशसितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे इट् का लोप होवे जैसे। विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ ४८९ ॥

वा०—विभाजयितुर्णिलोपश्च ॥ ४९० ॥

विभाजयितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे णिच् का लोप भी होवे जैसे। विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥ ४९० ॥

अवक्रयः ॥ ४९१ अ० । ४ । ४ । ५० ॥

अवक्रय अर्थात् खरीदने और बेचने अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। शौल्कशालाया अवक्रयो शौल्कशालिकः। आकरिकः। आपणिकः। हाटकिकः। इत्यादि ॥ ४९१ ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ४९२ ॥ अ० । ४ । ४ । ५१ ॥

पण्य समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। सुवर्णं पण्यमस्य सौवर्णिकः। अपूपाः पण्यमस्य—आपूपिकः। शाष्कुलिकः। ओषधयः पण्यमस्य—औषधिकः। मुक्ताः पण्यमस्य मौक्तिकः। इत्यादि ॥ ४९२ ॥

शिल्पम् ॥ ४९३ ॥ अ० । ४ । ४ । ५५ ॥

* नृ शब्द के ऋकारान्त होने से सूत्र से ही अञ् प्रत्यय हो जाता फिर इस का वार्त्तिक में ग्रहण के लिये ग्रहण किया है कि जैसे नृ शब्द से अञ् होकर नारी बनता है वैसे नर शब्द से भी जानो।

शिल्प शब्द क्रिया की कुशलता अर्थ में वर्त्तमान है । शिल्प समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । मृदङ्गवादनं * शिल्पमस्य मार्दङ्गिक: । पाणविक: । वीणावादनं शिल्पमस्य वैणिक: । इत्यादि ॥ ४८३ ॥

प्रहरणम् ॥ ४८४ ॥ अ० । ४ । ४ । ५७ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । आग्नेयास्त्रं प्रहरणमस्य–आग्नेयास्त्रिक: । शतघ्नी प्रहरणमस्य शातघ्निक: । भौशुण्डिक: । असि: प्रहरणमस्य आसिक: । चाक्रिक: । धानुष्क: । दाण्डिक: । इत्यादि ॥ ४८४ ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ४८५ ॥ अ० । ४ । ४ । ५८ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ईकक् प्रत्यय होवे जैसे । शक्ति: प्रहरणमस्य शाक्तीक: । याष्टीक: ॥ ४८५ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मति: ॥ ४८६ ॥ अ० । ४ । ४ । ६० ॥

अस्ति नास्ति और दिष्ट इन मति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे । अस्तीति मतिरस्य स आस्तिक: । † नास्तीति मतिरस्य स नास्तिक: । दिष्टमिति मतिरस्य स दैष्टिक: ॥ ४८६ ॥

शीलम् ॥ ४८७ ॥ अ० । ४ । ४ । ६१ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । अपूपभक्षणं शीलमस्य स आपूपिक: । शाष्कुलिक: ‡ । दौग्धिक: । मौदकिक: । औदनिक: । साक्तुक: । इत्यादि ॥ ४८७ ॥

छत्रादिभ्यो ण: ॥ ४८८ ॥ अ० । ४ । ४ । ६२ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ छत्र आदि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ण प्रत्यय होवे । ठक् प्राप्त है उस का बाधक है । छत्र शब्द मुख्य कर के छाता का नाम है ॥ ४८८ ॥

---

* यहां वाक्य में मृदङ्गवादन आदि के समस्त पद का लोप इस लिये [illegible] है कि मार्दङ्गिक शब्द से बजाने वाले का ही ग्रहण होवे । और मृदङ्ग रचने वाला कुम्हार तथा चाम आदि के मढ़ने वाले को भी [illegible] ऐसी शङ्का में होती है परन्तु लोक में मार्दङ्गिक शब्द से उस का बजाने वाला ही लिया जाता है । और [illegible] ऐसा ही वाक्यार्थ सब उदाहरणों में जानो ।

† यहां वाक्यार्थ में इतिशब्द समस्त पद का लोप समझना चाहिये क्यों कि ईश्वर और पुनर्जन्म और वेदादि [illegible] का सत्य मानना आदि है ऐसी बुद्धि जिस पुरुष की हो वह आस्तिक और इन के विरुद्ध नास्तिक कहावे । और जो इति शब्द का लोप न समझें तो जिस चोर आदि में अस्ति बुद्धि है उस को आस्तिक और [illegible] बुद्धि से रहित सब पदार्थ भी नास्तिक कहावें ।

‡ यहां भी भक्षण समस्त पद का लोप समझना चाहिये क्यों कि पूरी आदि [illegible] शील आदि न हो जावे [illegible] में इन पदार्थों के [illegible] वाले ही इन शब्दों से [illegible] जाते हैं ।

भा०–किंयस्य छत्रधारणं शीलं स छात्रः। किंचातः। रा
पुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्हुत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। छत्रमिव छ
त्रम्। गुरुश्छत्रम्। गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण गु
श्छत्रवत्परिपाल्यः॥ ४९९॥

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है। इस लिये महाभाष्य
कार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान कर दिया कि छत्र शब्द से यहां गुरु उपमि
है अर्थात् शिष्य के अज्ञान रूपी अन्धकार को गुरु निवारण करता है इस लि
छत्र है। जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करने हारे छाता को यत्न से रखते हैं
वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करने वाला पुरुष छात्र कहा ता है। और
जैसे छाता घाम आदि से होने वाले दुःखों का निवारण करता है वैसे ही गुरु
भी मूर्खता आदि से होने वाले दुःखों को नष्ट करता है। छत्रं गुरुस्तत्सेवनशी
लमस्य स छात्रः। कन्या चेच्छात्रा। बुभुक्षा शीलमस्य स बौभुक्षः। इत्यादि। इस
सूत्र पर जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं कि गुरु के जो दुष्ट कर्म हैं
उन के आच्छादन करने का स्वभाव वाला शिष्य छात्र कहाता है। इस व्याख्या-
न को बुद्धिमान् वैयाकरण विचारें कि महाभाष्य से कितना विरोध आता है।
इस सूत्र के व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि
लोग महापातकी होंगे॥ ४९९॥

हितं भक्षाः॥ ५००॥ अ०। ४। ४। ६५॥

यहां भक्ष शब्द में बहुवचन निर्देश से भक्ष वाचियों का ग्रहण होता है।
हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती और पूर्व से यहां षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति
आती है इस लिये उस षष्ठी का विपरिणाम चतुर्थी समझनी चाहिये। हित
समानाधिकरण प्रथमासमर्थ भक्ष्यवाची प्रातिपदिकों से चतुर्थी के अर्थ में ठक् प्र-
त्यय होवे जैसे। ओदना हितमस्मै। औदनिकः। अपूपा हितमस्मै–आपूपिकः।
शाष्कुलिकः। मौदकिकः। इत्यादि॥ ५००॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम्॥ ५०१॥ अ०। ४। ४। ६६॥

निरन्तर देने अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे।
अग्रासनमस्मै दीयते। आग्रासनिकः। आपभोजनिकः। अपूपाअस्मै दीयते ए
आपूपिकः। मौदकिकः। इत्यादि॥ ५०१॥

तत्र नियुक्तः॥ ५०२॥ अ०। ४। ४। ६९॥

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । आकराकारे नियुक्तः आकरिकः (आकराकारिकः) । शौल्कशालिकः । द्वारिकः । आपणिकः । धर्मोपदेशे नियुक्तो धार्मोपदेशिकः । वैद्याश्रमिकः । भाण्डागारिकः । देवालये नियुक्तो दैवालयिकः । इत्यादि ॥ ५०२ ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ५०३ ॥ अ० । ४ । ४ । ७० ॥

यहां पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है । नियत करने अर्थ में सप्तमी समर्थ अगारान्त प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय हो जैसे । धनागारे नियुक्तो धनागारिकः । शस्त्रागारिकः । वस्त्रागारिकः । पुस्तकागारिकः । इत्यादि ॥ ५०३ ॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ अ० । ४ । ४ । ७१ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निषेध है उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । श्मशानेऽधीते श्माशानिकः । शौद्रभाविधिकः । सन्निवेशायामधीते सान्निवेशिकः । अष्टम्यामधीते आष्टमिकः । चातुर्दशिकः । पौर्णमासिकः । इत्यादि ॥ ५०४ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥ ५०५ ॥ अ० । ४ । ४ । ७२ ॥

व्यवहार करने अर्थ में कठिनान्त प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । कुलकठिने व्यवहरति कौलकठिनिकः । कौटुम्बकठिनिकः । प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिकः । सांस्थानिकः । इत्यादि ॥ ५०५ ॥

निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ अ० । ४ । ४ । ७३ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो जैसे । निकटे वसति नैकटिकः ॥ ५०६ ॥

प्राग्घिताद्यत् ॥ ५०७ ॥ अ० । ४ । ४ । ७५ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर आये हैं उस की समाप्ति यहां से समझनी चाहिये । क्यों कि वहति शब्द अगले सूत्र में है उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं इस का दृष्टान्त भी पूर्व दे चुके हैं । यहां से ले के (तस्मै हितम्) इस अधिकार से पूर्व २ जो २ अर्थ कहेंगे उन २ में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये जैसे । रथं वहति रथ्यः । युग्यः । इत्यादि ॥ ५०७ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासंगम् ॥ ५०८ ॥ अ० । ४ । ४ । ७६ ॥

ले चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होवे जैसे । रथं वहति रथ्यः । युग्यः । प्रासंग्यः । रथ शब्द से सम्बन्ध सामान्य में

अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है। रथं वहति रथ्य:। रथस्य वोढा रथ्य:।
प्रयोग और अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है फिर दोनों जगह करने का प्रयोजन
है कि। जब तदन्तविधि मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे तब
अर्थ में प्राग्दीव्यतीय होने से (द्विगोर्लु०) इस से प्रत्यय का लुक् हो जावे
जैसे। द्वयोरथयोर्वोढा द्विरथ:। और जब। द्वौ रथौ वहति। ऐसा विग्रह
तब। द्विरथ्य:। ऐसा प्रयोग होगा। इसी प्रकार हल और सीर शब्दों से
दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है उस का भी यही प्रयोजन है॥५०८॥

संज्ञायां जन्या: ॥ ५०९ ॥ अ० । ४ । ४ । ८२ ॥

ले जाने अर्थ में वधूवाची द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा वाच्य
तो यत् प्रत्यय निपातन किया है जैसे। जनीं वधूं वहन्ति ते जन्या:। विवाह के
समय जो बराहत जाती है उस को जन्या कहते हैं॥५०९॥

विध्यत्यधनुषा ॥ ५१० ॥ अ० । ४ । ४ । ८३ ॥

लिपटने अर्थ में धनुष् आदि शस्त्रवाची शब्दों को छोड़ के द्वितीयासमर्थ प्राति
पदिकों से यत् प्रत्यय होवे जैसे। पादौ विध्यति पद्या दूर्वा। कण्ठं विध्यति कण्ठ्यो
रस:। यहां धनुष् का निषेध इस लिये है कि। धनुषा विध्यति। शत्रुं विध्यति।
यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे॥५१०॥

धनगणं लब्धा ॥ ५११ ॥ अ० । ४ । ४ । ८४ ॥

लाभ होने का कर्त्ता वाच्य रहे तो द्वितीयासमर्थ धन और गण शब्दों से
यत् प्रत्यय होवे जैसे। धनं लब्धा धन्य:। गणं लब्धा गण्य:॥५११॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्य: ॥ ५१२ ॥ अ० । ४ । ४ । ९० ॥

यहां पूर्व सूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति आती है। संयुक्त अर्थ में तृतीयासमर्थ
गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय होतो ञ्य प्रत्यय होवे जैसे। गृहपतिना
संयुक्तो गार्हपत्य:। यहां संज्ञा ग्रहण इस लिये है कि गार्हपत्य दक्षिणाग्नि का
नाम न हो जावे॥५१२॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यस-मसमितसम्मितेषु ॥ ५१३ ॥ अ० । ४ । ४ । ९१ ॥

तृतीयासमर्थ नौ आदि प्रातिपदिकों से तार्य आदि अर्थों में यथासंख्य क
के यत् प्रत्यय होवे जैसे नौ शब्द से उतरने अर्थ में। नावा तार्यं नाव्यम्। वय
स् शब्द से तुल्य अर्थ में। वयसा तुल्यं वयस्यं मित्रम्। धर्म शब्द से प्राप्त होने

ग्य अर्थ में। धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः। विष शब्द से मारने योग्य अर्थ में। विषेण वध्यो विष्यः पापी। मूल शब्द से नमाने अर्थ में। मूलेन नाम्यं मूल्यम्। और मूल शब्द से सम अर्थ में। मूलेन समो मूल्यो घटः। सीता शब्द से जोतने अर्थ में। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुला शब्द से तोलने अर्थ में। तुलया संमितं तुल्यं धान्यम् ॥ ५१३ ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ५१४ ॥ अ० । ४ । ४ । ९२ ॥

अनपेत अर्थात् युक्त अर्थ में पंचमीसमर्थ पथिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है जैसे। धर्मादनपेतं धर्म्यम्। पथोऽनपेतं पथ्यम्। अर्थ्यम्। न्याय्यम् ॥ ५१४ ॥

छन्दसो निर्मिते ॥ ५१५ ॥ अ० । ४ । ४ । ९३ ॥

निर्माण अर्थ में तृतीयासमर्थ छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो जैसे। छन्दसा निर्मितः। छन्दस्यः। यहां छन्दशब्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ ५१५ ॥

उरसोऽण् च ॥ ५१६ ॥ अ० । ४ । ४ । ९४ ॥

निर्मित अर्थ में तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से अण् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो जैसे। उरसा निर्मितः। औरसः। उरस्यः पुत्रः ॥ ५१६ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥ ५१७ ॥ अ० । ४ । ४ । ९५ ॥

प्रिय अर्थ में षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से यत् प्रत्यय हो जैसे। हृदयस्य प्रियो हृद्यो धर्मः। हृद्यो देशः। हृद्या कन्या। हृद्यं वनम् * ॥ ५१७ ॥

तत्र साधुः ॥ ५१८ ॥ अ० । ४ । ४ । ९८ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो जैसे। सामसु साधुः। सामन्यः। वेमन्यः। कर्मण्यः। शरण्यः। साधु नाम प्रवीण वा योग्य का है ॥ ५१८ ॥

सभाया यः ॥ ५१९ ॥ अ० । ४ । ४ । १०५ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो जैसे। सभायां साधुः सभ्यः यहां य और यत् में स्वर का भेद है उदाहरण का नहीं ॥ ५१९ ॥

ढश्छन्दसि ॥ ५२० ॥ अ० ४ । ४ । १०६ ॥

साधु अर्थ में जो वेद विषय हो तो सभा शब्द से ढ प्रत्यय हो जैसे। सभेयोऽस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम् ॥ ५२० ॥

समानतीर्थे वासी ॥ ५२१ ॥ अ० । ४ । ४ । १०७ ॥

---

* यहां सर्वत्र हृदय शब्द को (हृदयस्य हृल्लेख०) इस सूत्र से हृत् आदेश हो जाता है।

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२१ ॥

तीर्थे ये ॥ ५२२ ॥ अ० । ६ । ३ । ८७ ॥

तीर्थ उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स आदेश होवे जैसे। समाने तीर्थे वसति सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी * ॥ ५२२ ॥

समानोदरे शयितओचोदात्तः ॥ ५२३ ॥ अ० । ४ । २०८ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के ओकार को उदात्त हो । समान उदरे शयितः । समानोदर्यो भ्राता ॥ ५२३ ॥

सोदराद्यः ॥ ५२४ ॥ अ० । ४ । ४ । १०९ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ सोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२४ ॥

विभाषोदरे ॥ ५२५ ॥ अ० । ६ । ३ । ८८ ॥

उदर शब्द के परे यत् प्रत्यय हो तो समान शब्द को विकल्प करके स आदेश होवे जैसे । समानोदरे शयितः सोदर्यो भ्राता † ॥ ५२५ ॥

भवे छन्दसि ॥ ५२६ ॥ अ० । ४ । ४ । ११० ॥

भव अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो यहां छन्द का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक और भवाधिकार (पथ्यादिभ्यः) इस से पूर्व २ जानना चाहिये । यह अण् और घ आदि प्रत्ययों का अपवाद है । मेघ्याय च विद्युत्याय च नमः । इत्यादि ॥ ५२६ ॥

पूर्वैः कृतमिनियौ च ॥ ५२७ ॥ अ० । ४ । ४ । १३३ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व शब्द से इनि तथा य और चकार से यत् प्रत्यय होवें जैसे । पूर्वैः कृतं कर्म पूर्वि । पूर्व्यम् । पूर्वीणम् ॥ ५२७ ॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥ ५२८ ॥ अ० । ४ । ४ । १३४ ॥

संस्कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ अप् शब्द से यत् प्रत्यय हो जैसे । अद्भिः संस्कृतम् अप्यं हविः ॥ ५२८ ॥

सोममर्हति यः ॥ ५२९ ॥ अ० । ४ । ४ । १३७ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो । सोममर्हति सोम्यः ॥ ५२९ ॥

[illegible]

मये च ॥ ५३० ॥ अ० । ४ । ४ । १३८ ॥

जिन २ अर्थों में मयट् प्रत्यय विधान किया है उन २ अर्थों और उन्हीं समर्थ विभक्तियों में सोम शब्द से य प्रत्यय हो जैसे। सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यं मधु। इत्यादि ॥ ५३० ॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥ ५३१ ॥ अ० । ४ । ४ । १४३ ॥

करने अर्थ में शिव शम् और अरिष्ट शब्दों से तातिल् प्रत्यय हो जैसे। शिवस्य करः शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः ॥ ५३१ ॥

भावे च ॥ ५३२ ॥ अ० । ४ । ४ । १४४ ॥

भावार्थ में भी शिव शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से तातिल् प्रत्यय हो जैसे। शिवस्य भावः शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः ॥ ५३२ ॥

इति चतुर्थाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पंचमाऽध्याय आरभ्यते ॥

प्राक्क्रीताच्छः ॥ ५३३ ॥ अ० । ५ । १ । १ ॥

क्रीताधिकार से पूर्व २ छ प्रत्यय का अधिकार किया जाता है यहां से आगे सामान्य करके सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा जैसे। घटाय हिता घटीया मृत्तिका। इत्यादि ॥ ५३३ ॥

उगवादिभ्यो यत् ॥ ५३४ ॥ अ० । ५ । १ । २ ॥

क्रीत से पूर्व २ जो अर्थ कहे हैं उन में उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो यह छ प्रत्यय का अपवाद है। शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु। पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलव्या मृत्तिका। इत्यादि। गवादिकों से। गवे हितं गव्यम्। हविष्यम्। मेधायै हितं मेध्यम्। इत्यादि ॥ ५३४ ॥

तस्मै हितम् ॥ ५३५ ॥ अ० । ५ । १ । ५ ॥

हित नाम उपकारी का है उस हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो जैसे। रोगिणे हितं रोगीयमौषधम्। माषीयः पिषीयो वा पुनः। वत्सेभ्यो हितो गोधुक्। वत्सीयः। गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं। भाष्यम्। इत्यादि ॥ ५३५ ॥

तदस्य परिमाणम् ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ५७ ॥

षष्ठ्यर्थ में परिमाणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों
। प्रस्थ: परिमाणमस्य प्रास्थिको राशि: । खारीक: । शत्य: । शतिक: ।
स: । द्रौणिक: । कौडविक: । वर्षशतं परिमाणमस्य वार्षशतिक: । वार्ष-
स्रिक: । षष्टिर्जीवितं परिमाणमस्य षाष्टिक: । इत्यादि ॥ ५६६ ॥

ख्याया: संज्ञासंघसूत्राऽध्ययनेषु ॥ ५६७ ॥ अ० । ५ । १ । ५८ ॥

पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति यहां आती है । संज्ञा संघ सूत्र और अध्ययन
ों में परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी
र्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें ॥ ५६७ ॥

वा०-संज्ञायां स्वार्थे ॥ ५६८ ॥

संज्ञा अर्थ में कहे प्रत्यय स्वार्थ को संज्ञा में होवें जैसे । पञ्चैव पंचका: शकुनय: ।
एव त्रिका: शालङ्कायना: । संघ अर्थ में । पंच परिमाणमस्य पंचक: संघ: ।
का इमा: । त्रिक: । अष्टको वा । सूत्र अर्थ में । अष्टावध्याया: परिमाणमस्य
स्य । अष्टकं पाणिनीयं सूत्रम् । दशको गौतमो न्याय: । द्वादशिका जैमिनीया
मीमांसा । चतुष्कं व्यासीयं सूत्रम् । द्विकं वैयाघ्रपदीयम् । त्रिकं काशकृत्स्नम् ।
ायों का समुदाय भी संघ अर्थ में आ जाता है फिर सूत्र ग्रहण इस
के लिये है कि संघ शब्द बहुधा प्राणियों के समुदाय में आता है । अध्ययन
र्थ में । पञ्चकोऽधीत: । सप्तकोऽधीत: । अष्टक: । नवक: । इत्यादि ॥ ५६८ ॥

वा०-स्तोमे डविधि: पञ्चदशाद्यर्थ: ॥ ५६९ ॥

स्तोम परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ पञ्चदशादि प्रातिपदिकों से
ष्ठी के अर्थ में ड प्रत्यय होवे जैसे । पञ्चदश मन्त्रा: परिमाणमस्य स्तोमस्य प
दश: स्तोम: । सप्तदश: । एकविंश: । इत्यादि ॥ ५६९ ॥

वा०-शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि ॥ ५७० ॥

शन् और शत् जिन के अन्त हों उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोगविषय
में डिनि प्रत्यय हो जैसे । पञ्चदश दिनानि परिमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासा: ।
त्रिंशिनो मासा: ॥ ५७० ॥

वा०-विंशतेश्च ॥ ५७१ ॥

यह सूत्र ठक् प्रत्यय का बाधक है योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ यज्ञ औ
त्विज् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ और खञ् प्रत्यय होवें जैसे। यज्ञम
ति यज्ञियः। ऋत्विजमर्हति। स आर्त्विजीनो ब्राह्मणः ॥ ५७५ ॥

वा०—यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम् ॥ ५७६ ॥

यज्ञ और ऋत्विज् शब्दों से उन कर्मों के करने योग्य अर्थों में उक्त प्रत्यय हो
वार्त्तिक सूत्र का शेष है क्यों कि यह विशेष अर्थ सूत्र से नहीं आता है।
कर्मार्हति यज्ञियो देशः। ऋत्विक्कर्मार्हति। आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम्। अब यहां
तक अर्थ अधिकार पूरा हुआ इसी से ठक् प्रत्यय के अधिकार की समाप्ति जानो।
अब यहां से आगे केवल ठञ् प्रत्यय का ही अधिकार चलेगा ॥ ५७६ ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति ॥ ५७७ ॥ अ० । ५ । १ । ७२ ॥

द्वितीयासमर्थ पारायण तुरायण और चान्द्रायण प्रातिपदिकों से वर्त्तन
क्रिया का कर्त्ता वाच्य रहे तो ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। पारायणं वर्त्तयति पारा
यणिकश्छात्रः। तुरायणं वर्त्तयति तौरायणिको यजमानः। चान्द्रायणं वर्त्तयति
चान्द्रायणिको ब्राह्मणः ॥ ५७७ ॥

संशयमापन्नः ॥ ५७८ ॥ अ० । ५ । १ । ७३ ॥

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ संशय प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे
। संशयमापन्नः सांशयिकश्चोरः ॥ ५७८ ॥

योजनं गच्छति ॥ ५७९ ॥ अ० । ५ । १ । ७४ ॥

जाने अर्थ में द्वितीयासमर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे।
योजनं गच्छति यौजनिकः ॥ ५७९ ॥

वा०—क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ ५८० ॥

जाने अर्थ में द्वितीयासमर्थ क्रोशशत और योजनशत प्रातिपदिकों से भी
प्रत्यय हो जैसे। क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः। यौजनशतिकः ॥ ५८० ॥

वा०—ततोऽभिगमनमर्हतीति च ॥ ५८१ ॥

इस वार्त्तिक से पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है। निरन्तर चलने अर्थ में
द्वितीयासमर्थ क्रोशशत और योजनशत शब्दों से भी ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। क्रो-
शशतादभिगमनमर्हति क्रौशशतिको भिक्षुः। यौजनशतिक आचार्यः ॥ ५८१ ॥

उत्तरपथेनाहृतं च ॥ ५८२ ॥ अ० । ५ । १ । ७७ ॥

द्वितीयासमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । महानाम्नीश्चरति माहानामिकः । आदित्यव्रतिकः । इत्यादि ॥ ५८३ ॥

वा०—अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिः ॥ ५८४ ॥

द्वितीयासमर्थ अवान्तरदीक्षा आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में डिनि होवे जैसे । अवान्तरदीक्षामाचरति—अवान्तरदीक्षी । तिलव्रती । इत्यादि ॥ ५८४ ॥

वा०—अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च ॥ ५८५ ॥

यहां चरति क्रिया और डिनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व वार्त्तिकों से आ है । द्वितीयासमर्थ अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय हों जैसे । अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतमाचरति— अष्टाचत्वारिंशक अष्टाचत्वारिंशी ॥ ५८५ ॥

वा०—चातुर्मास्यानां यलोपश्च ॥ ५८६ ॥

यहां भी पूर्व की सब अनुवृत्ति आती है । द्वितीयासमर्थ चातुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होवें जैसे । चातुर्मास्यानि तान्याचरति चातुर्मासकः । चातुर्मासी ॥ ५८६ ॥

वा०—चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे ॥ ५८७ ॥

सप्तमीसमर्थ चतुर्मास शब्द से भव अर्थ यज्ञ होवे तो ण्य प्रत्यय हो जैसे चतुर्षु मासेषु भवाश्चातुर्मास्या यज्ञाः ॥ ५८७ ॥

वा०—संज्ञायामण् ॥ ५८८ ॥

भावार्थ संज्ञा अभिधेय हो तो सप्तमीसमर्थ चतुर्मास आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । चतुर्मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी । आषाढी । कार्त्तिकी । फाल्गुनी । चैत्री । इत्यादि ॥ ५८८ ॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ५८९ ॥ अ० । ५ । १ । ९५ ॥

षष्ठीसमर्थ यज्ञवाची प्रातिपदिकों से दक्षिणा अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे अग्निष्टोमस्य दक्षिणा—आग्निष्टोमिकी । आश्वमेधिकी । वाजपेयिकी । राजसूयिकी इत्यादि । यहां आख्या ग्रहण इस लिये है कि इस कालाधिकार में कालवाचि शब्दों का ही ग्रहण न होजावे ॥ ५८९ ॥

[illegible]

ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । ऋतुः प्राप्तोऽस्य ऋत्वियः । पयसो योनिर्ऋत्वियः । यहां घस् प्रत्यय के सित् होने से भ संज्ञा होकर पद संज्ञा का कार्य जश्त्व नहीं होता ॥ ६०५ ॥

प्रयोजनम् ॥ ६०६ ॥ अ० । ५ । १ । १०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे । उपदेशः प्रयोजनमस्य औपदेशिकः । आध्यापनिकः । स्त्री प्रयोजनमस्य स्त्रैणः । पौंस्नः । धर्मः प्रयोजनमस्य धार्मिकः । वितण्डाप्रयोजनत्वात् वैतण्डिकः । पारोक्षिकः । इत्यादि ॥ ६०६ ॥

अनुप्रवचनादिभ्यः ॥ ६०७ ॥ अ० । ५ । १ । १११ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ अनुप्रवचनादिगणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय हो । ठञ् का अपवाद है । अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम् । उत्थापनीयम् । अनुवासनीयम् । आरम्भणीयम् । इत्यादि ॥ ६०७ ॥

वा०-विशिपूरिपतिरुहिपदिप्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ६०८ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ विशि पूरि पति रुहि पदि इन ल्युट् प्रत्ययान्त धातुओं के प्रयोग जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होवे जैसे । गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम् । प्रपापूरणीयम् । अश्वप्रपतनीयम् । प्रासादारोहणीयम् । गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम् ॥ ६०८ ॥

वा०-स्वर्गादिभ्यो यत् ॥ ६०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्गादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यत् प्रत्यय हो जैसे । स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम् । यशस्यम् । आयुष्यम् । इत्यादि ॥ ६०९ ॥

वा०-पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् ॥ ६१० ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पुण्याहवाचन आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होवे जैसे । पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य पुण्याहवाचनम् । स्वस्तिवाचनम् । शान्तिवाचनम् । इत्यादि ॥ ६१० ॥

समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ६११ ॥ अ० । ५ । १ । ११२ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समापन शब्द जिन के अन्त में हो उन प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे । छन्दःसमापनं प्रयोजनमस्य

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१०॥ अ० ।५।१।१२४॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का बोध हो उन को गुणवचन कहते हैं यहां चकार भाव अर्थ का समुच्चय होने के लिये है। षष्ठीसमर्थ गुणवाची और ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे जैसे। शीतस्य भावः कर्म वा शैत्यम्। औष्ण्यम्। शीतत्वम्। शीतता। उष्णत्वम्। उष्णता। ब्राह्मणादिकों से। ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम्। चौर्यम्। मौढ्यम्। कौशल्यम्। चापल्यम्। नैपुण्यम्। इत्यादि। और अधिकार से त्व और तल् भी होते हैं। ब्राह्मणत्वम्। ब्राह्मणता। इत्यादि यहां से आगे भाव और कर्म दोनों अर्थों का अधिकार चलेगा ॥ ६१० ॥

वा०—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ ६१८ ॥

चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो जैसे। चत्वार एव वर्णाः चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। त्रैलोक्यम्। त्रैस्वर्यम्। ऐकस्वर्यम्। षाड्गुण्यम्। सैन्यम्। सान्निध्यम्। सामीप्यम्। औपम्यम्। सौख्यम्। इत्यादि ॥ ६१८ ॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥ ६१९ ॥ अ० ।५।१।१२५॥

भाव कर्म अर्थ में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार का लोप होवे जैसे। स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् ॥ ६१९ ॥

सख्युर्यः ॥ ६२० ॥ अ० ।५।१।१२६॥

भाव कर्म अर्थ में सखि शब्द से य प्रत्यय होवे जैसे। सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥६२०॥

वा०—दूतवणिग्भ्यां च ॥ ६२१ ॥

दूत और वणिक् शब्दों से भी य प्रत्यय हो जैसे। दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्। वणिज्यम्। वणिक् शब्द का पाठ ब्राह्मणादि गण में होने से ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है जैसे। वाणिज्यम् ॥ ५२१ ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ ६२२ ॥ अ० ।५।१।१२८॥

षष्ठीसमर्थ पति शब्द जिन के अन्त में हो उन और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होवे भाव और कर्म अर्थ वाच्य रहें तो जैसे। सेनापतेर्भावः कर्म वा सैनापत्यम्। वानस्पत्यम्। गार्हपत्यम्। बार्हस्पत्यम्। प्राजापत्यम्। अधिकार के होने से त्व तल् भी होते हैं जैसे। सेनापतित्वम्। सेनापतिता। इत्यादि। पुरोहितादिकों से। पौरोहित्यम्। राज्यम्। बाल्यम्। पुरोहितत्वम्। पुरोहितता। इत्यादि ॥ ६२२ ॥

यह पञ्चमाध्याय का प्रथम पाद पूरा हुआ ॥

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥ ६२३ ॥ अ० । ५ । २ । १ ॥

यहां बहुवचन का निर्देश होने से धान्य के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होता है। षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची शब्दों से उत्पत्ति का स्थान क्षेत्र अर्थ वाच्य रहे तो खञ् प्रत्यय हो जैसे। गोधूमानां भवनं क्षेत्रं गौधूमीनम्। मौद्गीनम्। कौद्रवीणम्। इत्यादि यहां धान्य वाचियों का ग्रहण इस लिये है कि। तृणानां भवनं क्षेत्रम्। यहां न हो और क्षेत्र का ग्रहण इस लिये है कि। गोधूमानां भवनं कुसूलम्। यहां भी खञ् प्रत्यय न होवे॥ ६२३॥

सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥ ६२४ ॥ अ० । ५ । २ । ७ ॥

सर्व शब्द जिन के आदि में हो ऐसे पथिन् अङ्ग कर्मन् पत्र और पात्र द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से व्याप्ति अर्थ में ख प्रत्यय होवे जैसे। सर्वपथं व्याप्नोति सर्वपथीनं शकटम्। सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति सर्वाङ्गीणमौषधम्। सर्वं कर्म व्याप्नोति सर्वकर्मीणः पुरुषः। सर्वपत्रीणः सारथिः। सर्वपात्रीणः सूपः। इत्यादि॥ ६२४॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ ६२५ ॥
अ० । ५ । २ । २४ ॥

पाक और मूल अर्थों में षष्ठीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि गणपठित प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कुणप् और जाहच् प्रत्यय हों जैसे। पीलूनां पाकः पीलुकुणः। बदरकुणः। खदिरकुणः। इत्यादि। कर्णादिकों से। कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्। अक्षजाहम्। केशानां मूलम्। केशजाहम्। दन्तजाहम्। इत्यादि॥ ६२५॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ ६२६ ॥ अ० । ५ । २ । २६ ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ज्ञात अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हों जैसे। विद्यया वित्तो ज्ञातः-विद्याचुञ्चुः। उपदेशेन वित्त उपदेशचणः। इत्यादि॥ ६२६॥

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह * ॥ ६२७ ॥ अ० । ५ । २ । २७ ॥

नसह अर्थात् पृथग्भाव अर्थ में वि और नञ् अव्यय प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ना और नाञ् प्रत्यय हों जैसे। विना। नाना। नञ् अव्यय के अकार का लोप होकर वृद्धि हो जाती है॥ ६२७॥

* इत्यादि जिन २ सूत्र वार्त्तिकों से अव्ययों से प्रत्यय विधान किये हैं वहां २ महाविभाषा अर्थात् (सम[illegible] । यह अधिकार सब में है [illegible] विकल्प की प्रवृत्ति [illegible] से वाक्य भी रहता अर्थात् जिस पक्ष में प्रत्यय हो जाते हैं।

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ ६२८ ॥ अ० । ५ । २ । २८ ॥

वि अव्यय प्रातिपदिक से शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय हों जैसे । विश विशङ्कटो वा पुरुषः ० ॥ ६२८ ॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२९ ॥ अ० । ५ । २९ ॥

यहां चकार ग्रहण से वि उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है । सम् प्र उद् वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय हो जैसे । सङ्कटम् । प्रकटम् । उत्क विकटम् ॥ ६२९ ॥

वा०—कटच्प्रकरणेऽलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् † ॥ ६३० ॥

अलाबू तिल उमा और भङ्गा प्रातिपदिकों से रज अर्थ में कटच् प्रत्यय जैसे । अलाबूनां रजोऽलाबूकटम् । तिलकटम् । उमाकटम् । भङ्गाकटम् ॥ ६

वा०—गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ६३१ ॥

स्थान आदि अर्थों में पशु आदि के विशेष नाम वाची शब्दों से गोष्ठ आदि प्रत्यय हों जैसे । गवां स्थानं गोगोष्ठम् । महिषीगोष्ठम् । अजागोष्ठम् । अ गोष्ठम् । इत्यादि ॥ ६३१ ॥

वा०—सङ्घाते कटच् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है । संघात अर्थ में पशुओं के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय हो जैसे । अवीनां सङ्घातोऽविकटम् उष्ट्राकटम् । गोकटम् । इत्यादि ॥ ६३२ ॥

वा०—विस्तारे पटच् ॥ ६३३ ॥

विस्तार अर्थ में पशुओं के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से पटच् प्रत्यय हो जैसे । गवां विस्तारो गोपटम् । उष्ट्रपटम् । अजपटम् । इत्यादि ॥ ६३३ ॥

[illegible]

† [illegible]

वा०-प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥ ६४८ ॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे जैसे प्रमाणवाची। प्रस्थमात्रम्। दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची। प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची। पंचमात्रा हयाः। दशमात्रा गावः। इत्यादि ॥६४८॥

वा०-वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४९ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों जैसे। तावदेव तावद्द्वयसम्। तावन्मात्रम्। एतावद्द्वयसम्। एतावन्मात्रम्। यावद्द्वयसम्। यावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० । ५ । २ । ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जैसे। यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्। प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती फिर परिमाण ग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०-वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्यउपसंख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगोंमें वतुप् प्रत्यय हो जैसे। त्वत्सदृशस्त्वावान्। मत्सदृशो मावान्। त्वावतः पुरूवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥६५१॥

किमिदंभ्यां वो घः ॥ ६५२ ॥ अ० । ५ । २ । ४० ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे जैसे। किम्परिमाणमस्य कियान्। इदम्परिमाणमस्य- इयान् ॥ ६५२ ॥

संख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० । ५ । २ । ४२ ॥

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है। अवयव समानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जैसे। पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० । ५ । २ । ४३ ॥

इस के नेत्र इस अर्थ में क्लिन्न शब्द को चिल् पिल् और चुल् आदेश और ल प्रत्यय होवे जैसे । क्लिन्ने अस्य चक्षुषी चिल्लः । पिल्लः । चुल्लः ॥ ६४१ ॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ६४२ ॥ अ० । ५ । २ । ३४ ॥

यहां (नते नासिका०) इस सूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति चली आती है । आसन्न और आरूढ़ अर्थ में वर्त्तमान उप और अधि उपसर्गों से संज्ञा विषयक अर्थ में त्यकन् प्रत्यय हो जैसे । पर्वतस्यासन्नमुपत्यका । पर्वतस्यारूढमधित्यका ॥ ६४२ ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ ६४३ ॥ अ० । ५ । २ । ३६ ॥

संजात समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक आदि गणपठित शब्दों से षष्ठी के अर्थ में इतच् प्रत्यय होवे जैसे । तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः । पुष्पितो वृक्षः । पण्डा संजाता अस्य पण्डितः । तन्द्रा संजाताऽस्य तन्द्रितः । मुद्रा संजाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् । इत्यादि । तारकादि आकृति गण समझना चाहिये ॥ ६४३ ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥ ६४४ ॥ अ० । ५ । २ । ३७ ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हों ॥ ६४४ ॥

का०-प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ॥ ६४५ ॥

द्वयसच् और दघ्नच् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान अर्थात् उंचाई के इतने अर्थ में होते हैं और मात्रच् सामान्य इयत्ता में जानो । यह कारिका सूत्र का शेष है जैसे । ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसमुदकम् । ऊरुदघ्नमुदकम् । ऊरुमात्रम् । जानुद्वयसम् । जानुदघ्नम् । जानुमात्रम् । प्रस्थमात्रम् । इत्यादि ॥ ६४५ ॥

वा०-प्रमाणे लः ॥ ६४६ ॥

प्रमाणवाची शब्दों से षष्ठी के अर्थ में हुए प्रत्यय का लुक् हो जैसे । शमः प्रमाणमस्य शमः । दिष्टिः । वितस्तिः । इत्यादि ॥ ६४६ ॥

वा०-द्विगोर्नित्यम् ॥ ६४७ ॥

द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो जैसे । द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमः । त्रिशमः । द्विवितस्तिः । इत्यादि इस वार्त्तिक में नित्य ग्रहण इस लिये है कि अगले वार्त्तिक में संशय अर्थ में मात्रच् कहा है वहां भी द्विगु से लुक् हो जावे जैसे । द्वे दिष्टी स्यातां वा नवा द्विदिष्टिः ॥ ६४७ ॥

---

* [illegible]

वा०–प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥ ६४८ ॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे जैसे प्रमाणवाची । शममात्रम् । दिष्टिमात्रम् । परिमाणवाची । प्रस्थमात्रम् । संख्यावाची । पञ्चमात्रा घटाः । दशमात्रा गावः । इत्यादि ॥ ६४८ ॥

वा०–वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४९ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों जैसे । तावदेव तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् । एतावद्द्वयसम् । एताव-न्मात्रम् । यावद्द्वयसम् । यावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० । ५ । २ । ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जैसे । यत्परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् । प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती फिर परिमाण ग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०–वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उप-संख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय हो जैसे । त्वत्सदृशस्त्वावान् । मत्सदृशो मावान् । त्वावतः पुरूवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥ ६५१ ॥

किमिदंभ्यां वो घः ॥ ६५२ ॥ अ० । ५ । २ । ४० ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे जैसे । किम्परिमाणमस्य कियान् । इदम्परिमाणमस्य- इयान् ॥ ६५२ ॥

संख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० । ५ । २ । ४२ ॥

अवयवी का अवयवों के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है । अवयव समानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जैसे । पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम् । दशतयम् । चतुष्टयम् । चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः । इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० । ५ । २ । ४३ ॥

पूर्व सूत्र से विहित जो द्वि त्रि शब्दों से तयप् प्रत्यय उस के स्थान में अयच् आदेश विकल्प करके होवे जैसे। द्वाववयवावस्य द्वयम्। द्वितयम्। त्रयम्। त्रितयम्। इस अयच् आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें तो तयप् ग्रहण न करने पड़े परन्तु स्थानिवद्भाव मान के जो अयी शब्द में ङीप् और जस् विभक्ति में सर्वनाम संज्ञा का विकल्प होता है सो नहीं पावे ॥ ६५४ ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ६५५ ॥ अ॰ । ५ । २ । ४४ ॥

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है। उभ शब्द से परे जो तयप् उस के स्थान में अयच् आदेश उदात्त नित्य ही होवे जैसे। उभाववयवावस्य- उभयो मणिः। उभये देवमनुष्याः। यहां उदात्त के कहने से आद्युदात्त होता है। क्योंकि अन्तोदात्त तो चित् होने से ही हो जाता ॥ ६५५ ॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥ ६५६ ॥ अ॰ ५। २। ४५॥

अधिकसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ दश जिन के अन्त में हो ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिकों से ड प्रत्यय हो जैसे। एकादश अधिका अस्मिन् शते- एकादशं शतम्। एकादशं सहस्रम्। द्वादशं शतं द्वादशं सहस्रम्। इत्यादि। यहां दशान्त ग्रहण इस लिये है कि। पञ्चाधिका अस्मिन् शते यहां प्रत्यय न हो। और अन्त ग्रहण इस लिये है कि दशाधिका अस्मिन् शते। यहां भी ड प्रत्यय नहीं। इति शब्द इस लिये पढ़ा है कि जहां प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो वहीं प्रत्यय हो और। एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते। यहां तथा। एकादशाधिका अस्यां विंशति। यहां भी विवक्षा के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥६५६॥

तस्य पूरणे डट् ॥ ६५७ ॥ अ॰ । ५ । २ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो जैसे। एकादशानां पूरण-एकादशः। द्वादशः। त्रयोदशः। इत्यादि। डट् प्रत्यय के टित् होने से टिलोप हो जाता है। दश व्यक्तियों में एक व्यक्ति ग्यारह को पूरण करती है ॥ ६५७ ॥

नान्तादसंख्यादेर्मट् ॥ ६५८ ॥ अ॰ । ५ । २ । ४९ ॥

यहां पूर्व से डट् की अनुवृत्ति आती है। संख्या जिस के आदि में न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिकों से विहित पूरण अर्थ में जो डट् उस को मट् का आगम होवे जैसे। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः। सप्तमः। अष्टमः। नवमः। इत्यादि। यहां नान्त ग्रहण इस लिये है कि। विंशतेः पूरणो विंशः। यहां न

हो और आदि में संख्या का निषेध इस लिये है कि। एकादशानां पूरण एकादशः। यहां भी मट् का आगम न हो ॥ ६५८ ॥

षट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ॥ ६५९ ॥ अ० । ५ । २ । ५१ ॥

डट् की अनुवृत्ति यहां भी आती है। षट् कति कतिपय और चतुर् शब्दों को डट् प्रत्यय के परे थुक् का आगम हो जैसे। षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः। कतिपयथः। चतुर्थः ॥ ६५९ ॥

वा०—चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ ६६० ॥

षष्ठीसमर्थ चतुर् प्रातिपदिक से डट् के अपवाद छ और यत् प्रत्यय हों और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो जैसे। चतुर्णां पूरणः तुरीयः। तुर्यः ॥ ६६० ॥

द्वेस्तीयः ॥ ६६१ ॥ अ० । ५ । २ । ५४ ॥

यह भी डट् का अपवाद है। द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो जैसे। द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥ ६६१ ॥

त्रेः सम्प्रसारणञ्च ॥ ६६२ ॥ अ० । ५ । २ । ५५ ॥

त्रि शब्द से तीय प्रत्यय और उस के परे उस को संप्रसारण भी होजावे जैसे। त्रयाणां पूरणस्तृतीयः * ॥ ६६२ ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ६६३ ॥ अ० । ५ । २ । ५६ ॥

विंशति आदि प्रातिपदिकों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम विकल्प करके हो जैसे। विंशतेः पूरणो विंशतितमः। विंशः। एकविंशतितमः। एकविंशः। त्रिंशत्तमः। त्रिंशः। एकत्रिंशत्तमः। एकत्रिंशः। इत्यादि ॥ ६६३ ॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥ ६६४ ॥ अ० । ५ । २ । ५७ ॥

पूरणार्थ में शत आदि मास अर्द्धमास और सम्वत्सर शब्दों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम नित्य ही होवे जैसे। शतस्य पूरणः शततमः। सहस्रतमः। लक्षतमः। इत्यादि। मासतमो दिवसः। अर्द्धमासतमः। संवत्सरतमः ॥ ६६४ ॥

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ॥ ६६५ ॥ अ० । ५ । २ । ५८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिन के आदि में न हो ऐसे जो षष्टि आदि शब्द हैं उन से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम हो जैसे। षष्टेः पूरणः। षष्टितमः। सप्ततितमः। अशीतितमः। नवतितमः। यहां संख्यादि का निषेध इस लिये है कि।

* यहां यण् के परे वकार संप्रसारण को दीर्घ इस लिये नहीं होता कि (हल) इस सूत्र में अण् की अनुवृत्ति आती और अण् पूर्व णकार से लिया जाता है।

एकपट: । एकपटितम: । एकमतः । एकमतितमः । यहां विग्रहादि विकल्प होजाता है। ६६५ ॥

स एषां ग्रामणीः ॥ ६६६ अ० । ५ । २ । ७८ ।

षष्ठ्यर्थ वाच्य रहे तो ग्रामणी अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय हो। ग्रामणी मुख्य का नाम है जैसे। देवदत्तो ग्रामणीर्येषां ते देवदत्तकाः। यहां ग्रामणी ग्रहण इस लिये है कि। देवदत्तः शत्रुरेषां इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो। ६६६ ॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ६६७ ॥ अ० । ५ । २ । ८१ ।

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची और प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय हो जैसे। द्वितीयेऽह्नि भवो द्वितीयको ज्वरः। तृतीयको ज्वरः। चतुर्थकः। प्रयोजन से। विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पको ज्वरः। कामपुष्पको ज्वरः। उष्णं कार्यमस्य उष्णकः। शीतको ज्वरः। इत्यादि।

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ॥ ६६८ ॥ अ० । ५ । २ । ८४ ।

यश्छन्दोऽधीते स श्रोत्रियः। यहां छन्द के पढ़ने अर्थ में छन्दस् शब्द को श्रोत्र भाव और घन् प्रत्यय निपातन किया है ॥ ६६८ ॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥ ६६९ ॥ अ० । ५ । २ । ८५ ।

अनेन भुक्तं इस अर्थ में प्रथमासमर्थ श्राद्ध प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे। श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्धी। श्राद्धिकः ॥ ६६९ ॥

साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ६७० ॥ अ० । ५ । २ । ९१ ।

द्रष्टा की संज्ञा अर्थ में साक्षात् अव्यय से इनि प्रत्यय हो जैसे। साक्षाद् द्रष्टा साक्षी ॥ ६७० ॥

इन्द्रियमिन्द्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ ६७१ ॥ अ० । ५ । २ । ९३ ॥

यहां इन्द्र जीवात्मा और लिंग चिन्ह का नाम है। लिंगादि अर्थों में इन्द्र शब्द से घच् प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिद्ध होता है जैसे। इन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियम्। इन्द्र नाम जीवात्मा का लिंग जो प्रकाशक चिन्ह हो उस को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रेण दृष्टम्। इन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टम्। इन्द्रियम्। यहां ईश्वर का ग्रहण है। इन्द्रेण जुष्टम्। इन्द्रियम्। यहां जीव का ग्रहण है। इन्द्रेण दत्तम्। इन्द्रियम्। यहां ईश्वर का ग्रहण होता है ॥ ६७१ ॥

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ६७२ ॥ अ० । ५ । २ । ९४ ॥

अस्ति और प्रथमासमानाधिकरण ख्याप् प्रातिपदिकों से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो जैसे। गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः।वृक्षाः सन्त्यस्मिन् स वृक्षवान् पर्वतः। यवाअस्य सन्ति यवमान्। प्लक्षवान्। इत्यादि॥ ६७२॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ ६७३ ॥ अ० । ८ । २ । ९ ॥

मकारान्त मकारोपध अवर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय के मकार को वकारादेश हो परन्तु यवादि प्रातिपदिकों से परे न हो जैसे मकारान्त। किंवान्। शंवान्। मकारोपध। शमीवान्। दाडिमीवान्। लक्ष्मीवान्। अवर्णान्त।वृक्षवान्। प्लक्षवान्। घटवान्। खट्वावान्। मालावान्। अवर्णोपध पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्। यहां मकारान्त आदि का ग्रहण इस लिये है कि अग्निमान्। वायुमान्। बुद्धिमान्। यहां वकार न हो और यवादि इस लिये कहा है कि यवमान्। दल्मिमान्। ऊर्मिमान्। इत्यादि। इन में मकार को वकार आदेश न होवे॥ ६७३॥

झयः ॥ ६७४ ॥ अ० । ८ । २ । १० ॥

झय् प्रत्याहारान्त प्रातिपदिकों से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो जैसे। अग्निचित्वान् ग्रामः। उदश्वित्वान् घोषः। विद्युत्वान् बलाहकः। मरुत्वानिन्द्रः। दृषद्वान् देशः। इत्यादि॥ ६७४॥

संज्ञायाम् ॥ ६७५ ॥ अ० । ८ । २ । ११ ॥

संज्ञा विषय में मतुप् के मकार को वकारादेश हो जैसे। अहीवती। कपीवती। ऋषीवती। मुनीवती वा नदी। इत्यादि॥ ६७५॥

का०—भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥ ६७६॥

बहुत निन्दा प्रशंसा नित्ययोग अतिशय सम्बन्ध और अस्ति (होने) की विवक्षा अर्थों में मतुप् और इस प्रकरण में जितने प्रत्यय हैं वे सब होते हैं। इस कारिका इसी सूत्र पर महाभाष्य में है जैसे। भूम अर्थ में। गोमान्। यवमान्। इत्यादि। निन्दा में। ककुदावर्त्तिनी। इत्यादि। प्रशंसा में। रूपवती। इत्यादि। नित्ययोग अर्थ में क्षीरिणो वृक्षाः। कण्टकिनो वृक्षाः। इत्यादि। अतिशय में उदरिणी कन्या। इत्यादि। सम्बन्ध में। दण्डी। छत्री। इत्यादि। होने की विवक्षा में अस्तिमान्॥ ६७६॥

वा०–गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् ॥ ६७७ ॥

गुणवाची प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जैसे । शुक्लो गुणे ऽस्याऽस्तो शुक्लः पटः । कृष्णः । श्वेतः । इत्यादि ॥ ६७७ ॥

रसादिभ्यश्च ॥ ६७८ ॥ अ० । ५ । २ । ६५ ॥

रस आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो जैसे । रसोऽस्याऽस्तीति रसवान् । रूपवान् । गन्धवान् । शब्दवान् । इत्यादि । यहां रसादि शब्दों से प्रत्ययविधान इस लिये किया है कि इन के गुणवाची होने से मतुप् का लुक् पूर्व वार्त्तिक से पाया था सो न हो ॥ ६७८ ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ६७९ ॥ अ० । ५ । २ । ९६ ॥

मत्वर्थ में प्राणिस्थवाची आकारान्त शब्दों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो जैसे । चूडालः । चूडावान् । कर्णिकालः कर्णिकावान् । जिह्वालः । जिह्वावान् । जंघालः । जंघावान् । यहां प्राणिस्थ ग्रहण इस लिये है कि । शिखावान् प्रदीपः । यहां न हो । और आकारान्त ग्रहण इस लिये है कि । हस्तवान् । पादवान् । इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ॥ ६७९ ॥

वा०–प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम् ॥ ६८० ॥

प्राणिस्थ आकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है वह प्राणियों के अङ्गवाचियों से हो अर्थात् चिकीर्षास्यास्ति जिहीर्षास्यास्ति चिकीर्षावान् । जिहीर्षावान् । इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो ॥ ६८० ॥

सिध्मादिभ्यश्च ॥ ६८१ ॥ अ० । ५ । २ । ९७ ॥

मत्वर्थ में सिध्म आदि प्रातिपदिकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में मतुप् जैसे । सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । गडुलः । गडुमान् । मणिलः । मणिमान् । इत्यादि ॥ ६८१ ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥६८२॥ अ०।५।२।१००॥

मत्वर्थ में लोमादि पामादि और पिच्छादि गणपठित प्रातिपदिकों से श न और इलच् प्रत्यय यथासंख्य करके हों तथा मतुप् भी होवे जैसे । लोमान्यस्य सन्ति लोमशः । लोमवान् । पामनः । पामवान् । पिच्छिलः । पिच्छवान् । उरसिलः । उरस्वान् । इत्यादि ॥ ६८२ ॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ॥ ६८३ ॥ अ० । ५ । २ । १०१ ॥

मत्वर्थ में प्रज्ञा श्रद्धा और अर्चा प्रातिपदिकों से ण प्रत्यय हो जैसे प्रज्ञाऽस्यास्ति प्राज्ञः । प्रज्ञावान् । श्राद्धः । श्रद्धावान् । आर्चः । अर्चावान् * ॥ ९८३ ॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ ९८४ ॥ अ० । ५ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिकों से विनि और इनि प्रत्यय हों जैसे । तपोऽस्यास्ति तपस्वी । सहस्री ॥ ९८४ ॥

अण् च ॥ ९८५ ॥ अ० । ५ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय भी हो जैसे । तापसः । साहस्रः ॥ ९८५ ॥

दन्त उन्नत उरच् ॥ ९८६ ॥ अ० । ५ । २ । १०६ ॥

उन्नतसमानाधिकरण दन्त शब्द से मतुप् के अर्थ में उरच् प्रत्यय हो जैसे । दन्ता उन्नता यस्य सन्ति स दन्तुरः । यहां उन्नत विशेषण इस लिये है कि दन्तवान् । यहां निन्दा आदि अर्थों में उरच् प्रत्यय न होवे ॥ ९८६ ॥

ऊषसुषिमुष्कमधोरः ॥ ९८७ ॥ अ० । ५ । २ । १०७ ॥

ऊष सुषि मुष्क और मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय होवे जैसे । ऊषोऽस्मिन्नस्ति । ऊषरा भूमिः । सुषिरं काष्ठम् । मुष्करः पशुः । मधुरो गुडः ॥ ९८७ ॥

वा०—रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥ ९८८ ॥

ख मुख और कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो जैसे । खमस्यास्तीति खरः । मुखमस्यास्तीति मुखरः । कुञ्जरः † ॥ ९८८ ॥

वा०—नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ ९८९ ॥

नग पांसु और पाण्डु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो जैसे । नगमस्मिन्नस्तीति नगरम् ‡ । पांसुरम् । पाण्डुरम् ॥ ९८९ ॥

वा०—कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ॥ ९९० ॥

कच्छू शब्द से र प्रत्यय और उस को ह्रस्वादेश भी हो जैसे । कच्छ्वास्यामस्तीति कच्छुरा भूमिः ॥ ९९० ॥

---

* यहां प्रज्ञा आदि शब्दों से ण और मतुप् प्रत्यय प्रशंसा अर्थ में समझना चाहिये । और जो सामान्य अर्थ अर्थात् बुद्धि जिस में हो ऐसा समझें तो साधारण प्राणियों के नाम प्राज्ञ और प्रज्ञावान् होंगे इस लिये इस का विशेष अर्थ समझो ।

† जिस के कफ में ख नाम विशेष अवकाश हो उस को और मुख का काम निरन्तर उच्चारण करना जिस का हो उस को मुखर और कुञ्जर बड़ी ठोढ़ी होने से हाथी को कहते हैं ।

‡ नग अर्थात् वृक्ष और पर्वत जिस में हों उस को नगर कहते हैं ।

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६८१ ॥ अ० । ५ । २ । १०८ ॥

इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा इस लिये समझना चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो। यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं जैसे। प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः। केशी। केशिकः। केशवान्। केश शब्द ज्योति अर्थात् प्रकाश गुण का भी नाम है ॥ ६८१ ॥

वा०-वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानम् ॥ ६८२ ॥

मणि और हिरण्य प्रातिपदिकों से भी व प्रत्यय हो जैसे। मणिरस्मिन्नस्तीति मणिवः सर्पः। हिरण्यवः * ॥ ६८२ ॥

वा०-छन्दसीवनिपौ च ॥ ६८३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई और वनिप् प्रत्यय हो जैसे। रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ। यहां (रथीः) शब्द में ई प्रत्यय हुआ है। सुमङ्गलीरियम् वधूः। इत्यादि। ऋतावानम्। मघवानमीमहे। यहां ऋत और मघ शब्द से वनिप् होता है ॥ ६८३ ॥

वा०-मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६८४ ॥

मेधा और रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् और इरच् प्रत्यय हो जैसे। मेधिरः। रथिरः। ये भी मतुप् के बाधक हैं ॥ ६८४ ॥

वा०-अपर आह। वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम् ॥६८५॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि अविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में आता है जैसे। बिम्बावम्। कुररावम्। इष्टकावम्। इत्यादि। प्रयोजन यह है कि पूर्व वार्त्तिक में जो मणि और हिरण्य शब्दों से व प्रत्यय कहा है उस का भी इस पक्ष में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥६८५॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ६८६ ॥ अ० । ५ । २ । ११२ ॥

रजस् कृषि आसुति और परिषत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय हो जैसे। रजोऽस्याः प्रवर्त्तत इति रजस्वला स्त्री। कृषीवलो ग्रामीणः। आसुतिवलः शौण्डिकः। परिषद्वलो राजा। इत्यादि ॥ ६८६ ॥

वा०-वलच् प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते ६८७ ॥

---

* हिरण्य नाम किसी विशेष सर्प का और हिरण्य धन विशेष की संज्ञा है।

विहितों से पृथक् प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में आता है जैसे। भ्रातरमाप्नोति भ्रातृवलः। पुत्रवलः। उत्साहवलः। इत्यादि ॥ ६९७ ॥

अतइनिठनौ ॥ ६९८ ॥ अ० । ५ । २ । ११५ ॥

मत्वर्थ में अकारान्त प्रातिपदिकों से इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे। दण्डी। दण्डिकः। छत्री। छत्रिकः। यहां विकल्प की अनुवृत्ति आने से पक्ष में मतुप् प्रत्यय भी होता है जैसे। दण्डवान्। दण्डिकः। छत्रवान्। छत्रिकः। इत्यादि। यहां तपरकरण इसलिये है कि खट्वावान्। यहां इनि ठन् न हों ॥ ६९८ ॥

का०-एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ ॥ ६९९ ॥

एकाक्षर शब्द कृदन्त जातिवाची और सप्तमी के अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हों सूत्र से जो प्राप्ति है उस का विशेष विषय में निषेध किया है जैसे। एकाक्षर से। स्ववान्। खवान्। इत्यादि। कृदन्त से। कारकवान्। हारकवान्। जातिवाचियों से। हंसवान्। अश्ववान्। व्याघ्रवान्। सिंहवान्। इत्यादि। सप्तमी अर्थ में। दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति। दण्डवती शाला। इत्यादि ॥ ६९९ ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ७०० ॥ अ० । ५ । २ ॥ ११६ ॥

व्रीहि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे। व्रीही। व्रीहिकः। व्रीहिमान्। मायी। मायिकः। मायावान्। इत्यादि ॥ ७०० ॥

का०-शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवखदादिषु ॥ ७०१ ॥

पूर्व सूत्र में जो व्रीह्यादि शब्दों में शिखादि गण हैं उन से इनि और यवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् (ठन्) कहना चाहिये। प्रयोजन यह है कि सब व्रीह्यादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हैं सो न हों किन्तु शिखादिकों से इनि ही हो ठन् न हो और यवखदादिकों से ठन् हो भी इनि न हो यह नियम समझना चाहिये जैसे। शिखी। मेखली। इत्यादि। यवखदिकः। इत्यादि ॥ ७०१ ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ७०२ अ० । ५ । २ । १२१ ॥

असन्त माया मेधा और स्रज् प्रातिपदिकों से मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो और मतुप् तो सर्वत्र होता ही है। और माया शब्द व्रीह्यादि गण में पढ़ा है उससे इनि ठन् भी होते हैं। असन्तों से। यशस्वी। तपस्वी। इत्यादि। मायावी। मायी। मायिकः। मायावान्। मेधावी। मेधावान्। स्रग्वी। स्रग्वान् ॥ ७०२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७०३ ॥ अ० । ५ । २ । १२२ ॥

वैदिकप्रयोग विषय में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थविषयक विनि प्रत्यय बहुल करके हो जैसे। अग्नेस्तेजस्विन्। यहां हो गया और सूर्यो वर्चस्वान्। यहां नहीं भी हुआ। इत्यादि। बहुल से अनेक प्रयोजन समझना चाहिये॥७०३॥

वा०-छन्दोविन्प्रकरणेऽष्टामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्च ॥ ७०४ ॥

अष्टा मेखला द्वय उभय रुजा और हृदय शब्दों से विनि प्रत्यय और इन को दीर्घादेश भी होवे जैसे। अष्टावी। मेखलावी। द्वयावी। उभयावी। हृदयावी॥७०४॥

वा०-मर्मणश्च ॥ ७०५ ॥

मर्मन् शब्द से भी विनि प्रत्यय और उस को दीर्घादेश हो जैसे। मर्मावी॥७०५॥

वा०-सर्वत्रामयस्योपसंख्यानम् ॥ ७०६ ॥

पूर्व के तीनों वार्त्तिकों से वेद में प्रत्यय विधान समझना चाहिये इसी लिये इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द पढ़ा है। सर्वत्र (लौकिक वैदिक सब प्रयोगों में) आमय शब्द से विनि प्रत्यय और दीर्घादेश भी होवे जैसे। आमयावी॥७०६॥

वा०-शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥ ७०७ ॥

पूर्व वार्त्तिक से अगले सब वार्त्तिकों में सर्वत्र शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये। शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में आरकन् प्रत्यय हो जैसे। शृङ्गाण्यस्य सन्ति शृङ्गारकः। वृन्दारकः॥७०७॥

वा०-फलबर्हाभ्यामिनच् ॥ ७०८ ॥

फल और बर्ह शब्दों से इनच् हो जैसे फलान्यस्मिन्सन्ति फलिनः बर्हिणः॥७०८॥

वा०-हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥ ७०९ ॥

हृदय शब्द से चालु प्रत्यय विकल्प करके हो और पक्ष में इनि ठन् तथा मतुप् भी हो जावें जैसे। हृदयालुः। हृदयी। हृदयिकः। हृदयवान्॥७०९॥

वा०-शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इति चालुर्वक्तव्यः ॥ ७१० ॥

शीत उष्ण और तृप्र प्रातिपदिकों से मत्वर्थ के न सह सकने अर्थ में चालु प्रत्यय हो जैसे। शीतं न सहते स शीतालुः। उष्णालुः। तृप्रालुः॥७१०॥

वा०-हिमाच्चेलुः ॥ ७११ ॥

हिम शब्द से उस के न सहने अर्थ में चेलु प्रत्यय हो जैसे। हिमं न सहते स हिमेलुः॥७११॥

वा०-बलादूलः ॥ ३१२ ॥

बल शब्द से उस को न सहने अर्थ में ऊल प्रत्यय हो जैसे। बलं न सहते इति बलूलः ॥ ३१२ ॥

वा०-वातात्समूहे च ॥ ३१३ ॥

वात शब्द से उस को न सहने और समूह अर्थ में ऊल प्रत्यय हो जैसे। वातानां समूहो वातं न सहते वा स वातूलः ॥ ३१३ ॥

वा०-पर्वमरुद्भ्यां तप् ॥ ३१४ ॥

पर्व और मरुत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय हो जैसे। पर्वाण्यस्य सन्ति स पर्वतः। मरुत्तः। और यह मरुत् शब्द मरुतों ने दिया ऐसे भी अर्थ में [illegible] प्रत्यय होने से बन जाता है ॥ ३१४ ॥

वाचो ग्मिनिः ॥ ३१५ ॥ अ० । ५ । २ । १२४ ॥

वाक् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो जैसे। प्रशस्ता वागस्य स वाग्मी। वाग्मिनौ। वाग्मिनः ॥ ३१५ ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥ ३१६ ॥ अ० । ५ । २ । १२५ ॥

यहां पूर्व सूत्र से वाक् शब्द की अनुवृत्ति आती है। बहुत बोलने अर्थ में वाक् प्रातिपदिक से आलच् और आटच् प्रत्यय हों जैसे। बहु भाषते इति वाचालः। वाचाटः। यह ग्मिनि प्रत्यय का अपवाद है। और यह भी समझना चाहिये कि जो विद्या के अनुकूल विचार पूर्वक बहुत बोलता है उस को वाचाल और वाचाट नहीं कहते हैं किन्तु जो अंड बंड बोले यह बात महाभाष्य में है ॥ ३१६ ॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ॥ ३१७ अ० । ५ । २ । १२६ ॥

यहां ऐश्वर्यवाची स्व शब्द से मत्वर्थ आमिन् प्रत्यय करके स्वामिन् शब्द निपातन किया है जैसे। स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति स्वामी। स्वामिनौ। स्वामिनः। ऐश्वर्य अर्थ इस लिये समझना चाहिये कि। स्ववान्। यहां आमिन् न हो ॥ ३१७ ॥

वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥ ३१८ ॥ अ० । ५ । २ । १२८ ॥

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और कुक् का आगम भी हो जैसे। वातकी। अतीसारकी। यहां रोग अर्थ में प्रत्यय होना इष्ट है इस से। वातवती गुहा। यहां इनि और कुक् नहीं होते ॥ ३१८ ॥

वा०-पिशाचाच्च ॥ ३१९ ॥

पिशाच शब्द से भी इनि और उस को कुक् का आगम होवे जैसे पिशाचकी वैश्रवण: ॥ ०१८ ॥

वयसि पूरणात् ॥ ६२० ॥ अ० । ५ । २ । १३० ॥

वयस् नाम अवस्था अर्थ में पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो जैसे । पञ्चमोऽस्यास्ति मास: संवत्सरो वा । पञ्चमी-उष्ट्र: । नवमी । दशमी । इत्यादि । यहां अवस्था ग्रहण इस लिये किया है कि । पञ्चमवान् ग्रामराग: । यहां इनि न हुआ ॥ ०२० ॥

सुखादिभ्यश्च ॥ ०२१ ॥ अ० । ५ । २ । १३१ ॥

सुख आदि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो जैसे । सुखमस्यास्ति सुखी । दु:खी । इत्यादि ॥ ०२१ ॥

धर्मशीलवर्णान्ताच्च ॥ ०२२ ॥ अ० । ५ । २ । १२२ ॥

धर्म शील और वर्ण ये शब्द जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो जैसे । ब्राह्मणस्य धर्म: ब्राह्मणधर्म: । सोऽस्यास्तीति ब्राह्मणधर्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी इत्यादि ॥ ०२२ ॥

हस्ताज्जातौ ॥ ०२३ ॥ अ० । ५ । २ । १३३ ॥

हस्त शब्द से जाति अर्थ में इनि प्रत्यय हो जैसे । हस्ती । हस्तिनी । हस्तिन: । यहां जाति इस लिये है कि । हस्तवान् पुरुष: । यहां इनि न हो ॥ ०२३ ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ॥ ०२४ ॥ अ० । ५ । २ । १३५ ॥

देश अर्थ में पुष्कर आदि शब्दों से इनि प्रत्यय हो जैसे । पुष्करी देश: । पुष्करिणी । पद्मिनी । यहां देश ग्रहण इस लिये है कि । पुष्करवान् तड़ाग: । यहां इनि प्रत्यय न हो ॥ ०२४ ॥

वा०--इनिप्रकरणे बलाद्बाहूरुपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ०२५ ॥

बाहु और ऊरु जिस के पूर्व हों ऐसे बल प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो जैसे बाहुबलमस्याऽस्ति स बाहुबली । ऊरुबली ॥ ०२५ ॥

वा०--सर्वादेश्च ॥ ६२६ ॥

---

* यहां (बलादिभ्यो०) इस सूत्र से लेकर जो इनि प्रत्यय विधान किया है सो (अत इनिठनौ) इस विहित सूत्र से इनि होजाता फिर विधान कियागया है अर्थात् उन २ प्रातिपदिकों और उन २ विशेष अर्थों में इनि हो वा ठन् न हो ।

सर्व शब्द जिस के आदि में हो ऐसे प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो जैसे । सर्वधनमस्याऽस्ति स सर्वधनी । सर्वबीजी । सर्वकेशी नटः । इत्यादि ॥ ३२६ ॥

वा०—अर्थाच्चासंनिहिते ॥ ३२७ ॥

जिस के निकट पदार्थ न हों और उन की चाहना हो ऐसे अर्थ में अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय हो जैसे । अर्थमभीप्सति— अर्थी । यहां असन्निहित ग्रहण इस लिये है कि । अर्थवान् । यहां इनि प्रत्यय न हो ॥ ३२७ ॥

वा०—तदन्ताच्च ॥ ३२८ ॥

अर्थ शब्द जिस के अन्त में हो उस से भी इनि प्रत्यय हो जैसे । धान्यार्थी । हिरण्यार्थी । इत्यादि इन सब वार्त्तिकों में भी यही नियम समझना चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और शब्दों से इनि ही हो ठन् न हो ॥ ३२८ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ ३२९ अ० । ५ । २ । १२६ ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में इनि समझो जैसे । बलमस्याऽस्तीति बलवान् । बली । उत्साहवान् । उत्साही । उद्भाववान् । उद्भावी । इत्यादि ॥ ३२९ ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥ ३३० ॥ अ० । ५ । २ । १३७ ॥

अन्त में मन्त और मान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इनि प्रत्यय हो जैसे । प्रथिमिनी । दामिनी । होमिनी । सोमिनी । यहां संज्ञा ग्रहण इस लिये है कि । सोमवान् । होमवान् । इत्यादि में इनि न हो ॥ ३३० ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ ३३१ ॥ अ० । ५ । २ । १३८ ॥

जल और सुख के वाची कम् और शम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ब, भ, युस्, ति, तु, त, और यस् प्रत्यय हों जैसे । कम्बः । शम्बः । कम्भः । शम्भः । कंयुः । शंयुः । कन्तिः । शन्तिः । कन्तुः । शन्तुः । कन्तः । शन्तः । कंयः । शंयः । यहां युस् और यस् प्रत्यय में सकार पदसंज्ञा होने के लिये है । इस से मकार को अनुस्वार और पर सवर्ण होते हैं और भसंज्ञा हो तो मकार को मकार ही बना रहे ॥ ३३१ ॥

अहंशुभमोर्युस् ॥ ३३२ ॥ अ० । ५ । २ । १४० ॥

अहं और शुभम् अव्यय संज्ञक शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो जैसे । अहंयुः । यह अहंकारी का नाम है । शुभंयुः । यह कल्याणकारी को कहा है ॥ ३३२ ॥

॥ यह द्वितीय पाद समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयपादः ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ ७३३ ॥ अ० । ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है । जो दिश् शब्द के उच्चारण से पूर्व २ प्रत्यय विधान क गे उन २ को विभक्ति संज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ ७३४ ॥ अ० । ५ । ३ । २ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । यहां से आगे किम् शब्द द्वि आदि से भिन्न सर्व नाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये ॥ ७३४ ॥

इदमश् ॥ ७३५ ॥ अ० । ५ । ३ । ३ ॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो जैसे । इतः इह । यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ॥ ७३५

एतेतौ रथोः ॥ ७३६ ॥ अ० । ५ । ३ । ४ ॥

जो प्राग्दिशीय रेफादि और थकारादि विभक्ति परे हों तो इदम् शब्द के एत और इत् आदेश होवें जैसे । एतर्हि । इत्थम् ॥ ७३६ ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ७३७ ॥ अ० । ५ । ३ । ६ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो जैसे । सर्वदा । सदा ॥ ७३७ ॥

पंचम्यास्तसिल् ॥ ७३८ ॥ अ० । ५ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से पंचमी विभक्ति के स्थान में तसिल् प्रत्यय हो जैसे । कस्मादिति कुतः । यस्मादिति यतः । ततः । बहुतः । इत्यादि ॥ ७३८ ॥

पर्य्यभिभ्याञ्च ॥ ७३९ ॥ अ० । ५ । ३ । ९ ॥

परि और अभि शब्दों से तसिल् प्रत्यय हो जैसे । परितः । चारों ओर से अभितः । सन्मुख से ॥ ७३९ ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ ७४० ॥ अ० । ५ । ३ । १० ॥

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में त्रल् प्रत्यय हो जैसे । कस्मिन्निति कुत्र । सर्वस्मिन्निति सर्वत्र । यत्र । तत्र । इत्यादि ॥ ७४० ॥

इदमो हः ॥ ७४१ ॥ अ० । ५ । ३ । ११ ॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो जैसे । अस्मिन्निति, इह ॥ ७४१ ॥

किमोऽत् ॥ ७४२ ॥ अ० । ५ । ३ । १२ ॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो जैसे। कस्मिन्निति,क्व ॥ ७४२ ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ अ० । ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पंचमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी उक्त प्रत्यय पाने में आते हैं इस में विशेष यह है कि ॥ ७४३ ॥

वा०-भवदादिभिर्योगे ॥ ७४४ ॥

भवान् दीर्घायुः आयुष्मान् देवानांप्रिय इन चार शब्दों के योग में पूर्व सूत्र से प्रत्यय विधान समझना चाहिये । अर्थात् सूत्र से जो सामान्य विधान था उस को वार्त्तिक ने विशेष जनाया है । जैसे । स भवान् । तत्र भवान् । ततो भवान् । तं भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तेन भवता । तत्र भवता । ततो भवता । तस्मै भवते । तत्र भवते । ततो भवते । तस्माद्भवतः । तत्र भवतः । ततो भवतः । तस्य भवतः । तत्र भवतः । ततो भवतः । तस्मिन् भवति । तत्र भवति । ततो भवति । स दीर्घायुः । तत्र दीर्घायुः । ततो दीर्घायुः । स आयुष्मान् । तत्रायुष्मान् । तत आयुष्मान् । स देवानां प्रियः । तत्र देवानांप्रियः । ततो देवानां प्रियः । इत्यादि ॥ ७४४ ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥ ७४५ ॥ अ० । ५ । ३ । १५ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो यह सूत्र अत् प्रत्यय का बाधक है जैसे । सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा । एकस्मिन् काले एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । इत्यादि । यहां काल इसलिये कहा है कि । सर्वत्र देशे । यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमो र्हिल् ॥ ७४६ ॥ अ० । ५ । ३ । १६ ॥

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में र्हिल् प्रत्यय हो जैसे । अस्मिन् काले । एतर्हि । यहां काल की अनुवृत्ति आने से (इहदेशे) इस प्रयोग में र्हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥ ७४७ ॥ अ० । ५ । ३ । १७ ॥

कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश्भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है जैसे । अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७ ॥

अथ तृतीयपादः ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ ७३३ ॥ अ० । ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है । जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व २ प्रत्यय विधान में उन २ की विभक्ति संज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ ७३४ ॥ अ० । ५ । ३ । २ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । यहां से आगे किम् शब्द द्वि आदि से भिन्न स नाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये ॥ ७३४ ॥

इदमइश् ॥ ७३५ ॥ अ० । ५ । ३ । ३ ॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो जैसे । इतः इह । यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ॥ ७३

एतेतौ रथोः ॥ ७३६ ॥ अ० । ५ । ३ । ४ ॥

जो प्राग्दिशीय रेफादि और थकारादि विभक्ति परे हों तो इदम् शब्द को एत और इत् आदेश होवें जैसे । एतर्हि । इत्थम् ॥ ७३६ ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ७३७ ॥ अ० । ५ । ३ । ६ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो जैसे । सर्वदा । सदा ॥ ७३७ ॥

पंचम्यास्तसिल् ॥ ७३८ ॥ अ० । ५ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से पंचमी विभक्ति के स्थान में तसिल्प्रत्यय हो जैसे । कस्मादिति कुतः । यस्मादिति यतः । ततः । बहुतः । इत्यादि ॥ ७३८ ॥

पर्य्यभिभ्याञ्च ॥ ७३९ ॥ अ० । ५ । ३ । ९ ॥

परि और अभि शब्दों से तसिल् प्रत्यय हो जैसे । परितः । चारों ओर से अभितः । सन्मुख से ॥ ७३९ ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ ७४० ॥ अ० । ५ । ३ । १० ॥

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में त्रल् प्रत्यय हो जैसे । कस्मिन्निति कुत्र । सर्वस्मिन्निति सर्वत्र । यत्र । तत्र । इत्यादि ॥ ७४० ॥

इदमो हः ॥ ७४१ ॥ अ० । ५ । ३ । ११ ॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो जैसे । अस्मिन्निति, इह ॥ ७४१ ॥

किमोऽत् ॥ ७४२ ॥ अ० । ५ । ३ । १२ ॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो जैसे। कस्मिन्निति, क्व ॥ ७४२ ॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ अ० । ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पंचमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी त्रल प्रत्यय होने में आते हैं इस में विशेष यह है कि ॥ ७४३ ॥

वा०—भवदादियोगे ॥ ७४४ ॥

भवान् दीर्घायुः आयुष्मान् देवानांप्रिय इन चार शब्दों के योग में पूर्व सूत्र से प्रत्यय विधान समझना चाहिये। अर्थात् सूत्र से जो सामान्य विधान था उस को वार्त्तिक से विशेष जनाया है। जैसे। स भवान्। तत्र भवान्। ततो भवान्। तं भवन्तम्। तत्र भवन्तम्। ततो भवन्तम्। तेन भवता। तत्र भवता। ततो भवता। तस्मै भवते। तत्र भवते। ततो भवते। तस्माद्भवतः। तत्र भवतः। ततो भवतः। तस्य भवतः। तत्र भवतः। ततो भवतः। तस्मिन् भवति। तत्र भवति। ततो भवति। स दीर्घायुः। तत्र दीर्घायुः। ततो दीर्घायुः। स आयुष्मान्। तत्रायुष्मान्। तत आयुष्मान्। स देवानांप्रियः। तत्र देवानांप्रियः। ततो देवानांप्रियः। इत्यादि ॥ ७४४ ॥

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥ ७४५ ॥ अ० । ५ । ३ । १५ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो यह सूत्र त्रल् प्रत्यय का बाधक है जैसे। सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा। एकस्मिन् काले एकदा। अन्यदा। कदा। यदा। तदा। इत्यादि। यहां काल इसलिये कहा है कि। सर्वत्र देशे। यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमो र्हिल् ॥ ७४६ ॥ अ० । ५ । ३ । १६ ॥

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में र्हिल् प्रत्यय हो जैसे। अस्मिन् काले। एतर्हि। यहां काल की अनुवृत्ति आने से (इह देशे) इस प्रयोग में र्हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥ ७४७ ॥ अ० । ५ । ३ । १७ ॥

कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश्भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है जैसे। अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७ ॥

में अतसुच् प्रत्यय होवे जैसे । दक्षिणतो वसति । दक्षिणत आगतः । दक्षि रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः। उत्तरतो रमणीयम्। अतसुच्प्र य के सद्भाव को इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है । और इस सूत्र में दि शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता किन्तु दिशा देश दो ही अर्थों के साथ होता है ॥ ७५८ ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥ ७५९ ॥ अ० । ५ । ३ । २९ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा इस लिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय कि से प्राप्त नहीं । अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी होजाता अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प क हो और पक्ष में अस्ताति होजावे जैसे । परतो वसति । परत आगतः । पर रमणीयम् । परस्ताद्वसति । परस्तादागतः । परस्ताद्रमणीयम् । अवरतो वसति अवरत आगतः । अवरतो रमणीयम् । अवस्ताद्वसति । अवस्तादागतः । अवस् द्रमणीयम् ॥ ७५९ ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ७६० ॥ अ० । ५ । ३ । ३० ॥

क्विबन्त अञ्चु धातु जिन के अन्त में हो ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ता प्रत्यय का लुक् होजावे जैसे । प्राच्यां दिशि वसति । प्राग्वसति । प्रागागत प्राग्रमणीयम् । यहां तद्धित संज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लु तद्धित०) इस सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ७६० ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ७६१ ॥ अ० । ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति अर्थ में निपातन किये हैं जैसे। ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति। उपर्यागतः उपरि रमणीयम्। उपरिष्टाद्वसति। उपरिष्टादागतः। उपरिष्टाद्रमणीयम् ॥७६१॥

पश्चात् ॥ ७६२ ॥ अ० । ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया है जैसे अपरस्यां दिशि वसति । पश्चाद्वसति । पश्चादागतः । पश्चाद्रमणीयम् ॥ ७६२ ॥

वा०-दिक्पूर्वपदस्य च ॥ ७६३ ॥

दिशा जिस के पूर्वपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आ प्रत्यय हो जैसे । दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ ७६३ ॥

वा०-अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

दिग्वाची शब्द जिस के पूर्वपद में हो और समास में अर्द्ध शब्द जिस के उत्तरपद में हो ऐसे अपर शब्द को पश्च आदेश होवे जैसे। दक्षिणपश्चार्द्धः। उत्तरपश्चार्द्धः ॥ ७६४ ॥

वा०—अर्द्धे च ॥ ७६५ ॥

पूर्वपदके विना भी अर्द्ध जिस के उत्तरपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो जैसे। पश्चार्द्धः ॥ ७६५ ॥

पश्च पश्चा चच्छन्दसि ॥ ७६६ ॥ अ० । ५ । ३ । ३३ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश अ तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं। और चकार से आति प्रत्यय भी हो जैसे। पश्च सिंहः। पश्चा सिंहः। पश्चात् सिंहः ॥ ७६६ ॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ७६७ ॥ अ० । ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में आति प्रत्यय होवे जैसे। उत्तरस्यां दिशि वसति, उत्तराद्वसति। उत्तरादागतः। उत्तराद्रमणीयम्। अधराद्वसति। अधरादागतः। अधराद्रमणीयम्। दक्षिणाद्वसति। दक्षिणादागतः। दक्षिणाद्रमणीयम् ॥ ७६७ ॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥ ७६८ ॥ अ० । ५ । ३ । ३५ ॥

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। और पूर्वसूत्र से उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति आती है। सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रत्यय का बाधक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में आति भी होजावे जैसे। उत्तरस्यां दिशि वसति। उत्तरेण वसति। उत्तराद्वसति। उत्तरतो वसति। उत्तरेण रमणीयम्। उत्तराद्रमणीयम्। उत्तरतो रमणीयम्। अधरेण वसति। अधराद्वसति। अधस्ताद्वसति। अधरेण रमणीयम्। अधराद्रमणीयम्। अधस्ताद्रमणीयम्। दक्षिणेन वसति। दक्षिणाद्वसति। दक्षिणतो वसति। दक्षिणेन रमणीयम्। दक्षिणाद्रमणीयम्। दक्षिणतो रमणीयम्। यहां अदूर ग्रहण इस लिये है कि। उत्तराद्वसति। यहां एनप् न होवे। और पञ्चमीसमर्थ का निषेध इस लिये किया है कि। उत्तरादागतः। यहां भी एनप् प्रत्यय न होवे। और यहां से आगे आति प्रत्यय के पूर्व २ सब सूत्रों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समझना चाहिये ॥ ७६८ ॥

दक्षिणादाच् ॥ ७६९ ॥ अ० । ५ । ३ । ३६ ॥

में अतसुच् प्रत्यय होवे जैसे । दक्षिणतो वसति । दक्षिणत आगतः । दक्षिणतो रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः। उत्तरतो रमणीयम्। अतसुच्प्रत्यय के उच्मात्र को इत्संज्ञा हो कर लोप होजाता है । और इस सूत्र में दक्षिण शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता किन्तु दिशा और देश दो ही अर्थों के साथ होता है ॥ ७५८ ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥ ७५९ ॥ अ० । ५ । ३ । २९ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा इस लिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं । अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी होजाता है अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो और पक्ष में अस्ताति होजावे जैसे । परतो वसति । परत आगतः । परतो रमणीयम् । परस्ताद्वसति । परस्तादागतः । परस्ताद्रमणीयम् । अवरतो वसति । अवरत आगतः । अवरतो रमणीयम् । अवस्ताद्वसति । अवस्तादागतः । अवस्ताद्रमणीयम् ॥ ७५९ ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ७६० ॥ अ० । ५ । ३ । ३० ॥

क्विबन्त अञ्चु धातु जिन के अन्त में हो ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् होजावे जैसे । प्राच्यां दिशि वसति । प्राग्वसति । प्रागागतः। प्राग्रमणीयम् । यहां तद्धित संज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धित०) इस सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ७६० ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ७६१ ॥ अ० । ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं जैसे। ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति। उपर्यागतः। उपरि रमणीयम्। उपरिष्टाद्वसति। उपरिष्टादागतः। उपरिष्टाद्रमणीयम् ॥ ७६१ ॥

पश्चात् ॥ ७६२ ॥ अ० । ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया है जैसे। अपरस्यां दिशि वसति । पश्चाद्वसति । पश्चादागतः । पश्चाद्रमणीयम् ॥ ७६२ ॥

वा०-दिक्पूर्वपदस्य च ॥ ७६३ ॥

दिशा जिस के पूर्वपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आति प्रत्यय हो जैसे । दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ ७६३ ॥

वा०-अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

संख्याया विधार्थे धा ॥ ७७५ ॥ अ० । ५ । ३ । ४२ ॥

क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो जैसे । एकधा भुंक्ते । द्विधा गच्छति । चतुर्धा । पंचधा । इत्यादि ॥ ७७५ ॥

याप्ये पाशप् ॥ ७७६ ॥ अ० । ५ । ३ ॥ ४७ ॥

याप्य (निन्दित) अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो जैसे । कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः । याज्ञिकपाशः । इत्यादि जो पुरुष व्याकरणशास्त्र में प्रवीण और बुरे आचरण करता हो उसको वैयाकरणपाश संज्ञा इस लिये नहीं होती कि जिस गुण के विद्यमान होने से वैयाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस पुरुष में होती है उसी गुण की निन्दा में प्रत्यय होता है ॥ ७७६ ॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ७७७ ॥ अ० । ५ । ३ । ५२ ॥

असहाय वाची एकशब्द से स्वार्थ में आकिनिच् प्रत्यय हो और चकार से कन् प्रत्यय और लुक् भी हो जैसे । एकाकी । एककः । एकः । यहां आकिनिच् और कन् दोनों का लुक् समझना चाहिये परन्तु प्रत्यय विधान व्यर्थ न हो इस लिये पक्ष में लुक् होता है ॥ ७७७ ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ७७८ ॥ अ० । ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशायन (प्रकृत्यर्थ की उन्नति) अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हों जैसे । अतिशयितः श्रेष्ठः श्रेष्ठतमः । वैयाकरणतमः । आढ्यतमः । दर्शनीयतमः । सुकुमारतमः । इत्यादि । अयमेषामतिशयेन पटुः, पटिष्ठः । लघिष्ठः । गरिष्ठः । इत्यादि ॥ ७७८ ॥

तिङश्च ॥ ७७९ ॥ अ० । ५ । ३ । ५६ ॥

यहां तद्धित प्रकरण में चतुर्थाध्याय के आदि में ङ्याबन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रत्यय विधान का अधिकार कर चुके हैं। इस कारण तिङन्त शब्दों से प्रत्यय विधान नहीं प्राप्त है इसी लिये यह सूत्र पढ़ा है । तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय हो जैसे । अयमेषुभृशं पचति, पचतितमाम् । जल्पतितमाम् । इत्यादि । यहां पूर्व सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय इस लिये नहीं आता कि प्रत्ययान्त गुणवाची शब्दों से लोक में द्रव्य अर्थों के साथ सम्बन्ध दीखता है क्रिया शब्दों के साथ नहीं ॥ ७७९ ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ७८० ॥ अ० । ५ । ३ । ५७ ॥

यहां तिङन्त की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है जहां विभाग करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो वहां सामान्य प्रातिपदिकों से और तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हों जैसे । द्वाविमावाढ्यौ, अयमनयोरतिशयेनाढ्यः, आढ्यतरः । द्वाविमौ विद्वांसौ, अयमनयोरतिशयेन विद्वान्, विद्वत्तरः । दाघतरः । पचतितराम् । जल्पतितराम् । इत्यादि । ईयसुन् । द्वाविमौ गुरू, अयमनयोरतिशयेन, गरीयान् । पटीयान् । लघीयान् । इत्यादि । विभज्योपपद में । माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः । वाराणसेया इतरेभ्यो विदग्धतराः । दर्शनीयतराः । इत्यादि । ईयसुन् । गरीयांसः । पटीयांसः । इत्यादि ॥ ७८० ॥

अजादी गुणवचनादेव ॥ ७८१ ॥ अ० । ५ । ३ । ५८ ॥

पूर्व सूत्रों में जो अजादि (इष्ठन् ईयसुन्) प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं उन का यहां विषय नियम करते हैं कि वे दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिकों से ही होवें अन्य से नहीं । उदाहरण पूर्व दे चुके हैं । नियम होने से । पाचकतरः । पाचकतमः । इत्यादि में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय नहीं होते । और प्रकृति का नियम समझना चाहिये प्रत्यय का नहीं अर्थात् गुणवाची प्रातिपदिकों से तरप् तमप् प्रत्यय भी होते हैं और द्रव्यवाचक शब्दों से तरप् तमप् ही होते हैं इष्ठन् और ईयसुन् नहीं होते ॥ ७८१ ॥

तुश्छन्दसि ॥ ७८२ ॥ अ० । ५ । ३ । ५९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अजादि की अनुवृत्ति चली आती है । पूर्व सूत्र में गुणवाचियों से नियम किया है इस से यहां प्राप्त नहीं थी । तृ और तृन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से वेदविषय में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होवें जैसे । आसुति करिष्ठः । अतिशयेन कर्त्ता । ऐसा विग्रह होगा । अतिशयेन दोग्धा । दोहीयसी धेनुः । [illegible]) इस से पुनः [illegible] का लुक् हो जाता है ॥ ७८२ ॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥ ७८३ ॥ अ० । ५ । ३ । ६० ॥

अजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होता है जैसे । अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः, श्रेष्ठः । द्वाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः, श्रेयान् । [illegible] शब्दों का प्रकृतिभाव [illegible] नहीं होता ॥ ७८३ ॥

ज्य च ॥ ७८४ ॥ अ० । ५ । ३ । ६१ ॥

कस्य च दः ॥ ७९७ ॥ अ० । ५ । ३ । ७२ ॥

यहां अव्ययों के सम्बन्ध का मूलार्थ के साथ सम्भव होने से अव्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है सर्वनाम की नहीं क्योंकि सर्वनाम शब्द कोई ककारान्त नहीं है ककारान्त अव्ययों को अकच् प्रत्यय के संयोग में दकारान्त आदेश होवे जैसे । धिक् । धकित् । हिरुक् । हिरकुत् । पृथक् । पृथकत् । इत्यादि ॥७९७॥

अनुकम्पायाम् ॥ ७९८ ॥ अ० । ५ । ३ । ७६ ॥

दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति निवारण करने को अनुकम्पा कहते हैं अनुकम्पा अर्थ में वर्त्तमान सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों जैसे । पुत्रकः । वत्सकः । दुर्बलकः । बुभुक्षितकः । ज्वरितकः । इत्यादि । तिङन्तों से । शेतकि । विश्वसितकि । स्वपितकि । प्राणितकि । इत्यादि ॥७९८॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ७९९ ॥ अ० । ५ । ३ । ८३ ॥

यहां पूर्व सूत्र से लोप की अनुवृत्ति आती है । इस प्रकरण में जो ठ अजादि प्रत्यय हैं उन के परे प्रकृति के द्वितीय अच् से अन्य जो शब्द रूप है उस का लोप हो ऊर्ध्व शब्द के ग्रहण से सब का लोप होजाता है जैसे । अनुकम्पितो देवदत्तः । देविकः । देवियः । देविलः । यज्ञिकः । यज्ञियः । यज्ञिलः । यहां देवदत्त और यज्ञदत्त शब्द से ठ, घ, और इलच् प्रत्यय क्रम से हुए हैं । अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तकः, उपडः । उपकः । उपियः । उपिलः । उपिकः । यहां उपेन्द्रदत्त शब्द से अडच्, वुच्, घ, इलच्, तथा ठच्, प्रत्यय होते हैं । इस सूत्र में ठ को भी इक आदेश हो जाता है । फिर अजादि के कहने से ठ प्रत्यय का भी ग्रहण हो जाता. फिर ठ प्रत्यय का ग्रहण इस लिये है कि जहां उक् प्रत्याहार से परे ठ के स्थान में क आदेश होता है वहां भी दो अच् से अन्यवर्णों का लोप हो जावे जैसे । अनुकम्पितो वायुदत्तः, वायुकः । पितृकः ॥ ७९९ ॥

वा०-द्वितीयादचो लोपे सन्ध्यक्षरस्य द्वितीयत्वे तदादेर्लोपो वक्तव्यः ॥ ८०० ॥

दो अक्षरों से अन्य वर्णों का जो लोप सूत्र से कहा है सो जो द्वितीय अक्षर सन्ध्यक्षर (ए, ऐ, ओ, औ,) हो तो वहां सन्ध्यक्षर का भी लोप होजावे जैसे । लहोडः । लहिकः । कहोडः । कहिकः । यहां लहोड कहोड किसी मनुष्य विशेष की संज्ञा हैं उन में हकारविशिष्ट ओकार का भी लोप हो जाता है ॥८००॥

वा०-चतुर्थात् ॥ ८०१ ॥

द्वितीय अच् से परे अन्य भाग का भी लोप कहा है सो चतुर्थ अच् से परे भी होजावे जैसे । बृहस्पतिदत्तकः । बृहस्पतिकः । बृहस्पतियः । बृहस्पतिलः । इत्यादि ॥ ८०१ ॥

वा०—अनजादौ च ॥ ८०२ ॥

अजादि प्रत्यय के परे लोप कहा है । सो हलादि प्रत्ययों के परे भी द्वितीय अच् से अर्ध का लोप हो जैसे । देवदत्तकः । देवकः । यज्ञदत्तकः । यज्ञकः । यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥ ८०२ ॥

वा०—लोपः पूर्वपदस्य च ॥ ८०३ ॥

अजादि हलादि सामान्य प्रत्ययों के परे संज्ञावाची शब्दों के पूर्वपद का भी लोप होजावे जैसे । देवदत्तो दत्तकः । यज्ञदत्तो दत्तकः । दत्तिकः । दत्तियः । दत्तिलः । इत्यादि ॥ ८०३ ॥

वा०—अप्रत्यये तथैवेष्टः ॥ ८०४ ॥

कोई भी प्रत्यय न परे हो तो भी पूर्वपद का लोप होवे जैसे । देवदत्तो दत्तः इत्यादि ॥ ८०४ ॥

वा०—उवर्णाल्ल इलस्य च ॥ ८०५ ॥

उवर्णान्त संज्ञाशब्द से परे जो इलच् प्रत्यय उस के इकार का लोप हो जैसे । भानुदत्तो भानुलः । वसुदत्तो वसुलः । इत्यादि ॥ ८०५ ॥

वा०—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपः ॥ ८०६ ॥

एकाक्षर जिन का पूर्वपद हो उन के उत्तरपद का लोप हो अजादि प्रत्ययों के परे जैसे । वागाशीः । वाचिकः । स्रुचिकः । त्वचिकः । इत्यादि ॥ ८०६ ॥

किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥ ८०७ ॥ अ० । ५ । ३ । ९२ ॥

दो में से एक का जहां निर्द्धारण (पृथक्) करना हो वहां किम्, यत् और तत् प्रातिपदिकों से डतरच् प्रत्यय होवे । जातिवाची क्रियावाची गुणवाची वा संज्ञा शब्दों के समुदाय से एकदेश का पृथक् करना होता है जैसे । कतरो भवतोः कठः । कतरो भवतोः कारकः । कतरो भवतोः पटुः कतरो भवतोर्देवदत्तः । यतरो भवतोः कठः । यतरो भवतोः कारकः । यतरो भवतोः पटुः । यतरो भवतोर्देवदत्तः । ततर आगच्छतु । इत्यादि । यहां महा विभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है इस से । [illegible]र्देवदत्तः । स आगच्छतु । इत्यादि वाक्यों में डतरच् प्रत्यय नहीं [illegible]

अथ चतुर्थः पादः ।

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ॥ ८१७ ॥ अ० । ५ । ४ । १ ॥

संख्या जिन के आदि में हो ऐसे पाद और शत प्रातिपदिकों से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय और पाद शत शब्दों के अन्त का लोप होवे जैसे। द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकां ददाति। द्वे द्वे शते ददाति द्विशतिकां ददाति। इत्यादि यहां भसंज्ञक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता फिर लोप ग्रहण इस लिये है कि उस लोप के परनिमित्तक होने से स्थानिवद्भाव हो कर पाद शब्द को पत् आदेश नहीं पावे यह लोप परनिमित्त नहीं है इस कारण स्थानिवद्भाव का निषेध होकर पत् आदेश होजाता है। इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का ग्रहण किया है। परन्तु पाद शत शब्दों से अन्यत्र भी संख्यादि शब्दों से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है जैसे। द्विमोदकिकामाददाति। इत्यादि प्रयोगों का आश्रय लेकर महाभाष्यकार ने पाद शत ग्रहण की उपेक्षा की है ॥ ८१७ ॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥ ८१८ ॥ अ० । ५ । ४ । ७ ॥

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलंकर्म, अलंपुरुष, और अधि जिन के उत्तरपद में हों उन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख प्रत्यय होवे जैसे। अविद्यमानानि षट्–अक्षीण्यस्य। इस प्रकार बहुव्रीहि समास किये पश्चात् अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है। उस अषडक्ष शब्द से ख प्रत्यय हुआ है। अषडक्षीणो मन्त्रः। आशिता गावोऽस्मिन्नरण्ये, आशितङ्गवीनमरण्यम्। यहां निपातन पूर्वपद को मुक् का आगम हुआ है। अलङ्कर्मीणम्। अलंपुरुषीणम्। कर्म्माधीनः। राजाधीनः। इत्यादि ॥ ८१८ ॥

विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ॥ ८१९ ॥ अ० । ५ । ४ । ८ ॥

यहां अप्राप्त विभाषा है क्यों कि ख प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु जिन के अन्त में हो उन प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के स्वार्थ में ख प्रत्यय होवे जैसे। प्राक्, प्राचीनम्। अर्वाक्, अर्वाचीनम्। दिशा स्त्रीलिंग का निषेध इस लिये है कि। प्राची दिक्। प्रतीची दिक्। दिशा का ग्रहण इस लिये है कि। प्राचीना ब्राह्मणी। अर्वाचीना शिखा। इत्यादि में ख प्रत्यय न होवे ॥ ८१९ ॥

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ ८२० ॥ अ० । ५ । ४ । १० ॥

तुल्य अर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके छ प्रत्यय होवे स्वार्थ में जैसे । पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः । पितृस्थानः । मातृस्थानीयः । मातृस्थानः । भ्रातृस्थानीयः । भ्रातृस्थानः । राजस्थानीयः । राजस्थानः । इत्यादि यहां सस्थान ग्रहण इस लिये है कि । गोस्थानम् । अश्वस्थानम् । यहां न हो ॥ ८२० ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥ ८२१ ॥ अ० । ५ । ४ । ११ ॥

किम् एकारान्त निपात तिङन्त और अव्यय शब्दों से परे जो घ प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से अद्रव्य (क्रिया और गुण) की अधिकता में आमु प्रत्यय होवे । यद्यपि गुण कर्मों के बिना केवल द्रव्य की कुछ उत्पत्ति नहीं होती तथापि क्रिया और गुणों की उत्पत्ति को जब द्रव्य में विवक्षा होती है उस द्रव्यस्थ प्रकर्ष का निषेध यहां समझना चाहिये जैसे । किन्तराम् । किन्तमाम् । पूर्वाह्णेतराम् । पूर्वाह्णेतमाम् । पठतितराम् । पठतितमाम् । उच्चैस्तराम् । उच्चैस्तमाम् । इत्यादि । यहां आमु प्रत्यय में उकारानुबन्ध मकार की रक्षा के लिये है ॥ ८२१ ॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ अ० । ५ । ४ । १४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में जो तदन्त णच् प्रत्यय होता है तदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग स्वार्थ में अञ् प्रत्यय होवे जैसे । व्यावक्रोशी । व्यावहासी । इत्यादि ॥ ८२२ ॥

संख्यायाः क्रियाऽभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ ८२३ ॥ अ० । ५ । ४ । १७ ॥

एक ही जिस का कर्त्ता हो ऐसी एक ही प्रकार की क्रियाओं के बार २ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची शब्दों से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होवे जैसे । पंच वारान् भुंक्ते पंचकृत्वो भुंक्ते । सप्तकृत्वः । अष्टकृत्वः । दशकृत्वः । इत्यादि यहां संख्या ग्रहण इस लिये है कि । भूरीन् वारान् भुंक्ते । यहां प्रत्यय न हो और बार २ होना क्रिया का ही हो सकता है द्रव्य गुण का नहीं फिर यहां क्रिया ग्रहण इस लिये है कि उत्तर सूत्रों में जहां क्रिया की गिनती जाती और अभ्यावृत्ति नहीं होती वहां भी हो जावे । और अभ्यावृत्ति ग्रहण इस लिये है कि क्रिया मात्र के गणने में न हो जैसे । पंच पाकाः । दश पाकाः ॥ ८२३ ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ ८२४ ॥ अ० । ५ । ४ । १८ ॥

क्रिया के बार २ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची द्वि, त्रि, और चतुर् शब्दों से कृत्वसुच् का बाधक सुच् प्रत्यय होवे जैसे । द्विः पठति । त्रिः खादति । चतुः पिबति । इत्यादि ॥ ८२४ ॥

एकस्य सकृच्च ॥ ८२५ ॥ अ० । ५ । ४ । १९ ॥

क्रिया की संख्या में वर्त्तमान एक शब्द से कृत्वसुच् का अपवाद सुच् प्रत्यय और एक शब्द को सकृत् आदेश होवे जैसे । सकृदधीते । सकृद्ददाति । सकृत् कन्या प्रदीयते । इत्यादि ॥ ८२५ ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥ ८२६ ॥ अ० । ५ । ४ । २१ ॥

जिस शब्द से प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो उसी के निरन्तर कहने अर्थात् आत्यन्तर के मेल की निवृत्ति करने अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में मयट् प्रत्यय होवे जैसे । आनन्दमयं ब्रह्म । अर्थात् ईश्वर में दुःख का लेश भी नहीं है । अन्नमयम् । प्राणमयम् । मनोमयम् । इत्यादि ॥ ८२६ ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥ ८२७ ॥ अ० । ५ । ४ । २३ ॥

अनन्त, आवसथ, इतिह, और भेषज, शब्दों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होवे जैसे । अनन्त एव, आनन्त्यम् । आवसथ एव, आवसथ्यम् । इतिह, ऐतिह्यम् । भेषजमेव, भैषज्यम् ॥ ८२७ ॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ ८२८ ॥ अ० । ५ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिस के अन्त में हो उन चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिकों से प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ के लिये होवे तो यत् प्रत्यय होवे जैसे । अग्निदेवतायै, इदम्, अग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् । मातृदेवत्यम् । वायुदेवत्यम् । इत्यादि ॥ ८२८ ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ ८२९ ॥ अ० । ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्य अर्थ में चतुर्थीसमर्थ अतिथि प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो जैसे । अतिथये, इदमातिथ्यम् ॥ ८२९ ॥

देवात्तल् ॥ ८३० ॥ अ० । ५ । ४ । २७ ॥

देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होवे जैसे । देवएव, देवता ॥ ८३० ॥

लोहितान्मणौ ॥ ८३१ ॥ अ० । ५ । ४ । ३० ॥

मणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जैसे । लोहितो मणिः, लोहितकः । मणि ग्रहण इस लिये है कि । लोहितः । यहां प्रत्यय न हो ॥ ८३१ ॥

वा०-लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपद विधि में कन् प्रत्यय के समर्थ होने से लोहित में तकार को नकार आदेश नहीं प्राप्त है इस लिये यह वार्त्तिक कहा है कि लोहित शब्द से कन् प्रत्यय नकारादेश का बाधक विकल्प करके होवे जैसे । लोहिनिका । लोहितिका ॥ ८३२ ॥

मृदस्तिकन् ॥ ८५० ॥ अ० । ५ । ४ । ३८ ॥

मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो जैसे । मृदेव मृत्तिका ॥ ८५० ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ८५१ ॥ अ० । ५ । ४ । ४० ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय हो जैसे । प्रशस्ता मृत्, मृत्सा । मृत्स्ना ॥ ८५१ ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥ ८५२ ॥ अ० । ५ । ४ । ४२ ॥

यहां शस् प्रत्यय को किसी सूत्र में प्राप्ति न होने से यह अप्राप्त विभाषा समझनी चाहिये । कारकवाची बहु अल्प और इन के अर्थ के शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय होवे किसी कारक का यहां विशेष निर्देश नहीं किया इस से कर्मादि सब कारकों का ग्रहण होता है जैसे । बहूनि ददाति । बहुशो ददाति । अल्पेन, अल्पं ददाति । अल्पशो ददाति । बहुभिर्ददाति । बहुशो ददाति । बहुना बहुषु वा बहुशः । अल्पश, ...शो ददाति । बहुभ्यः । बहुशः । अल्पशः । इन के अर्थ के । भूरिशो ददाति । स्तोकशो ददाति । इत्यादि अल्पे वा, अल्पशः । इन के अर्थों के ग्रहण इस लिये है कि । गां ददाति । अश्वं ददाति । इत्यादि से शस् प्रत्यय न होवे ॥ ८५२ ॥

यहां बहु तथा अल्पार्थों का ग्रहण इस लिये है कि । गां ददाति ।

वा०—बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥ ८५३ ॥

बहु और अल्प शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है वहां बहु से मङ्गल और अल्प शब्द से अमंगल अर्थ में होवे । यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है इस लिये ... उदाहरण भी समझने चाहिये । अर्थात् बहुशो ददाति । यह प्रयोग अनिष्ट ... बहुत देने में न होवे और । अल्पशो ददाति । यह भी इष्ट के देने में ... न किया जावे ॥ ८५३ ॥

प्रतियोगे पंचम्यास्तसिः ॥ ८५४ ॥ अ० । ५ । ४ । ४४ ॥

कर्म प्रवचनीय संज्ञक प्रति शब्द के योग में जहां पंचमी विभक्ति की है ... विभक्त्यन्त प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय होवे जैसे । प्रद्युम्नो वासुदेवतः ... अभिमन्युरर्जुनतः प्रति । यहां पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आने से । ... अर्जुनात् । ऐसा भी प्रयोग होता है ॥ ८५४ ॥

वा०—तसिप्रकरण आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ८५५ ॥

इस प्रकरण में आद्यादि शब्दों से तसि प्रत्यय करना चाहिये जैसे ... आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पार्श्वतः । पृष्ठतः । इत्यादि ॥ ८५५ ॥

कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः ॥ ८५६ ॥ अ० । ५ । ४ । ५० ॥

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कृ, भू और अस्ति धातुओं के योग में च्वि प्रत्यय होवे ॥ ८५६ ॥

वा०—च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् ॥ ८५७ ॥

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष समझना चाहिये। जो पदार्थ प्रथम कारण रूप से अप्रसिद्ध हो और पीछे कार्य रूप से प्रकट किया जावे उस को अभूततद्भाव कहते हैं। इस अभूततद्भाव अर्थ में उक्त सूत्र से च्वि प्रत्यय कहा है सो होवे जैसे। अशुक्लः शुक्लः संपद्यते तं करोति शुक्लीकरोति। अर्थात् जो पदार्थ प्रथम से मलीन है उस को शुद्ध करता है। शुक्लीभवति। शुक्लीस्यात्। कठिनीकरोति। कठिनीभवति। कठिनीस्यात्। घटीकरोति। घटीभवति। घटीस्यात्। इत्यादि। प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस स्वरूप से वर्त्तमान हो उसी अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की विवक्षा समझनी चाहिये और इस प्रत्यय के विना लोक में सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है कि जो पदार्थ जैसा हो उस को वैसे ही स्वरूप से वर्णन करें। यहां अभूततद्भाव ग्रहण इस लिये है कि। संपद्यन्ते यवाः। संपद्यन्ते शालयः। यहां च्वि प्रत्यय न होवे। कृ भू अस्ति धातुओं का योग इस लिये कहा है कि। अशुक्लः शुक्लो जायते। यहां न हो और संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता का ग्रहण इस लिये है कि। घटे संयुज्यते। यहां भी च्वि प्रत्यय न होवे ॥ ८५७ ॥

वा०—समीपादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ८५८ ॥

समीप आदि शब्दों से भी पूर्वोक्त अर्थों में च्वि प्रत्यय होवे जैसे। असमीपं समीपस्थम् भवति। समीपीभवति। अभ्याशीभवति। अन्तिकीभवति। सविधीभवति। इत्यादि। यहां प्रकृति से विकार का होना नहीं है इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ॥ ८५८ ॥

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ॥ ८५९ ॥ अ० । ५ । ४ । ५२ ॥

यहां च्वि प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति आती है। संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कृ भू और अस्ति धातु का योग हो तो अभूततद्भाव अर्थ में संपूर्णता विदित होवे तो साति प्रत्यय विकल्प करके हो जैसे। भस्मसाद्भवति काष्ठम्। भस्मसात्करोति। भस्मसात्स्यात्। भस्मीभवति। भस्मी स्यात्। उदकसाद्भवति लवणम्। उदकीभवति लवणम्। इत्यादि प्रकृति संपूर्ण विकार रूप हो जावे। यह सूत्र च्वि प्रत्यय का अपवाद और

यहां त्राप्रत्यय विभाषा है। इस से च्वि प्रत्यय भी होजाता है। यहां संपूर्णता ग्रहण इस लिये है कि। एकदेशेन पटः शुक्लो भवति। यहां प्रत्यय न होवे ॥ ८८९ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८९० ॥ अ० । ५ । ४ । ५६ ॥

यहां साति प्रत्यय निवृत्त हुआ और त्रा प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है द्वितीया और सप्तमी समर्थ देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, और मर्त्य प्रातिपदिकों से बहुल करके स्वार्थ में त्रा प्रत्यय होवे जैसे। देवान् नमस्करोति। देवत्रा नमस्करोति। देवेषु वसति देवत्रा वसति। मनुष्यान् गच्छति—मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु वसति। मनुष्यत्रा वसति। पुरुषं ध्यायति—पुरुषत्रा ध्यायति। पुरून् यच्छति। पुरुत्रा यच्छति। पुरुषु वसति पुरुत्रा वसति। मर्त्यान् मर्त्येषु वा मर्त्यत्रा। इत्यादि यहां बहुल शब्द के ग्रहण से अन्य शब्दों से भी त्रा प्रत्यय होजावे जैसे। बहुत्रा जीवतो मनः। इत्यादि ॥ ८९० ॥

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् ॥ ८९१ ॥ अ० । ५ । ४ । ५७ ॥

यहां कृ भू और अस्ति धातुओं के योग की अनुवृत्ति आती है जिस ध्वनि में अकारादि वर्ण पृथक् २ स्पष्ट नहीं जाने जावें उस को अव्यक्त शब्द कहते हैं। उसी शब्द के अनुसार जो बनाया जावे कि वह अव्यक्त शब्द ऐसा हुआ उस को अव्यक्तानुकरण कहते हैं। इति शब्द जिस से परे न हो और जिस के एक अर्द्धभाग में दो अच् हों ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से कृ भू और अस धातुओं के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। पटपटा करोति। पटपटा भवति। पटपटा स्यात्। दमदमा करोति। दमदमा भवति। दमदमा स्यात्। खलखला करोति। खलखला भवति। खलखला स्यात्। इत्यादि यहां अव्यक्तानुकरण ग्रहण इस लिये है कि। दृषत्करोति। दरत्करोति। इत्यादि में डाच् प्रत्यय न हो। द्व्यजवरार्द्ध ग्रहण इस लिये है कि। श्रत्करोति। यहां एकाच् से न हो और अवर शब्द का ग्रहण इस लिये है कि खरट खरट करोति। यहां अर्द्धभाग में तीन अच् हैं इस से डाच् प्रत्यय नहीं होता और इतिपरक का निषेध इस लिये है कि। पटिति करोति। यहां इति शब्द के परे डाच् प्रत्यय न हो (डाचि बहुलं द्वे भवतः) इस वार्त्तिक से विवक्षामात्र से डाच् प्रत्यय के होने की विवक्षा में दो द्विर्वचन हो जाता है पश्चात् डाच् प्रत्यय होता है। जो कदाचित् ऐसा न समझें तो जिस के अवर अर्द्धभाग में दो अच् हों यह कहना ही न बने। डाच् प्रत्यय में डकार का लोप होकर डित् मान के टि लोप और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्त स्वर होता है ॥ ८९१ ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥ ८६२ ॥ अ०। ५। ४। ५८॥

यहां कृञ् धातु का ग्रहण भू और अस धातुओं की निवृत्ति के लिये है। द्वितीय तृतीय शम्ब और बीज प्रातिपदिकों से खेती अर्थ अभिधेय हो तो कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। द्वितीया करोति। दूसरी बार खेत को जोतता है। तृतीया करोति। तीसरी बार जोतता है। शम्बा करोति। सीधा जोत के फिर तिरछा जोतता है। बीजाकरोति। बीजबोने के साथ ही जोतता है। यहां कृषिग्रहण इस लिये है कि द्वितीयं करोति पादम्। यहां डाच् न होवे॥८६२॥

संख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥ ८६३ ॥ अ०। ५। ४। ५९॥

यहां कृञ् धातु और कृषि अर्थ दोनों की अनुवृत्ति चली आती है। गुण शब्द जिन के अन्त में हो ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिकों से कृषि अर्थ में कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जैसे। द्विगुणं विलेखनं क्षेत्रस्य करोति–द्विगुणा करोति क्षेत्रम्। त्रिगुणा करोति। इत्यादि यहां कृषि ग्रहण इस लिये है कि। द्विगुणां करोति रज्जुम्। यहां डाच् प्रत्यय न हो। पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्द भेद ही प्राप्त होता है अर्थ भेद नहीं॥८६३॥

समयाच्च यापनायाम् ॥ ८६४ ॥ अ०। ५। ४। ६०॥

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं आती परन्तु कृञ् धातु की चली आती है करने योग्य कर्मों के अवसर मिलने को समय कहते हैं उस समय के यापना (अतिक्रमण) अर्थ में समय शब्द से कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। समया करोति। कालक्षेप करता है। यहां यापना ग्रहण इस लिये है कि। समयं करोति मित्रः। यहां डाच् प्रत्यय न हो॥८६४॥

मद्रात्परिवापणे ॥ ८६५ ॥ अ०। ५। ४। ६७॥

मङ्गलवाची मद्र शब्द से परिवापण (मुण्डन) अर्थ में कृञ् धातु का योग होवे तो डाच् प्रत्यय हो। मङ्गलं मुण्डनं करोति। मद्रा करोति। यहां परिवापण इस लिये कहा है कि। मद्रं करोति। यहां डाच् प्रत्यय न होवे॥८६५॥

वा०–भद्राच्च ॥ ८६६ ॥

भद्र शब्द से भी परिवापण अर्थ में कृञ् धातु का योग हो तो डाच् प्रत्यय हो जैसे। भद्रा करोति नापितः कुमारम्। यहां भी परिवापण अर्थ से पृथक्। भद्रं करोति। यही प्रयोग होता है॥८६६॥

इति पंचमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः॥

नस्तद्धिते ॥ ८६७ ॥ अ० ६ । ४ । १४४ ॥

तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हो तो नकारान्त भसंज्ञक शब्द के टिभाग का लोप होवे जैसे । अग्निशर्मणोऽपत्यमाग्निशर्मिः । औडुलोमिः । इत्यादि यहां अग्नि-शर्मन् आदि शब्दों को बाह्वादि गण में पाठ होने से इञ् प्रत्यय हुआ है । यहां नान्त का ग्रहण इस लिये है कि (सात्वतः) यहां तकारान्त के टिभाग का लोप न होवे । और तद्धित ग्रहण इस लिये है कि । शर्मणा । शर्मणे । इत्यादि प्रयोगों में लोप न हो ॥ ८६७ ॥

वा०—नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम् ॥ ८६८ ॥

यहां इनन्त और अनन्त शब्दों में आगामी सूत्रों से प्रकृतिभाव प्राप्त है उस का पुरस्तात् अपवाद यह वार्त्तिक है । तद्धित प्रत्ययों के परे सब्रह्मचारिन् आदि भसंज्ञक नकारान्त प्रातिपदिकों के टिभाग का लोप होवे जैसे । सब्रह्मचारिण इमे छात्राः साब्रह्मचाराः । यहां सम्बन्धसामान्य में शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है । पीठसर्पिण इमे छात्राः पैठसर्पाः । यहां भी पूर्व के समान अण् । कलापिना प्रोक्तमधीयते—कालापाः । यहां (कलापिनोऽण्) इस सूत्र से प्रोक्त अर्थ में अण् । कौथुमिना प्रोक्तमधीयते—कौथुमाः । यहां भी पूर्ववत् अण् जानो । तैतिलिनामकं शास्त्रमधीयते विदुर्वा—तैतिलाः । जाजलाः । लाङ्गलाः । शैलालाः । शैखण्डाः । सूकरसद्मना प्रोक्तमधीयते सौकरसद्माः । सुपर्वणा प्रोक्तमधीयते सौपर्वाः । यहां तैतिलि आदि अण्वाले शब्दों से शैषिक प्रोक्त अर्थ में छ होने से प्रत्यय प्राप्त है इस लिये अधीत वेद अर्थ में अण् समझना चाहिये । और सूकरसद्मन् तथा सुपर्वन् शब्दों से छ संज्ञा के न होने से प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होता है ॥ ८६८ ॥

वा०—चर्मणः कोश उपसंख्यानम् ॥ ८६९ ॥

कोश (तलवार का घर) अर्थ हो तो तद्धित संज्ञक प्रत्ययों के परे होते चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे जैसे । चर्मणो विकारः कोशः । चार्मः कोशः । जहां कोश अर्थ न हो वहां । चार्मणः । प्रयोग होगा ॥ ८६९ ॥

वा०—अश्मनो विकार उपसंख्यानम् ॥ ८७० ॥

विकार अर्थ में तद्धित प्रत्यय परे हों तो पाषाणवाची अश्मन् शब्द के टिभाग का लोप हो जैसे। अश्मनो विकार आश्मः। जहां विकार अर्थ न हो वहां। आश्मनः। ऐसा ही रहै ॥ ८००॥

वा०-शुनः संकोच उपसंख्यानम् ॥ ८०१ ॥

कुत्ते के वाची श्वन् शब्द के टिभाग का लोप हो संकोच अर्थ अभिधेय रहै तो संकुचितः श्वा शौवः। इस श्वन् शब्द का द्वारादि गण में पाठ होने से वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है। और संकोच अर्थ से अन्यत्र। शौवनः। ऐसा ही प्रयोग होगा ॥ ८०१ ॥

वा०-अव्ययानां च सायंप्रातिकाद्यर्थम् ॥ ८०२ ॥

तद्धित संज्ञक प्रत्ययों के परे सायम्प्रातिक आदि शब्दों के सिद्ध होने के लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना चाहिये जैसे। सायंप्रातर्भवः सायंप्रातिकः। पौनःपुनिकः। इत्यादि यहां द्वन्द्व संज्ञक अव्ययों से ठञ् होता है। शाश्वतिक शब्द में निपातन मान के टि लोप नहीं होता (विप्रतिषेध विरोधः शाश्वतिकः) जिन अव्यय शब्दों में अविहित टिलोप दीखता है वहां वैसे ही अव्ययों में समझना चाहिये क्यों कि। शाश्वतम्। इत्यादि में इन किये अव्यय और ठञ् प्रत्यय दोनों ही नहीं इस से लोप नहीं होता ॥ ८०२ ॥

अह्नष्टखोरेव ॥ ८०३ ॥ अ० । ६ । ४ । १४५ ॥

यह सूत्र नियमार्थ है। ट और ख इन्हीं दोनों प्रत्ययों के परे अहन् शब्द के टिभाग का लोप होवे अन्यत्र प्रकृतिभाव ही हो जावे। जैसे। द्वे अहनी समाहृते, द्व्यहः। त्र्यहः। यहां समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है। द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्व्यहीनः। त्र्यहीनः। अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः। यहां टिलोप का नियम इस लिये है कि। अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम्। यहां नियम के होने से टिलोप न होवे ॥ ८०३ ॥

ओर्गुणः ॥ ८०४ ॥ अ० । ६ । ४ । १४६ ॥

तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हों तो उवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों को गुण होवे जैसे। बभ्रोर्गोत्रापत्यं बाभ्रव्यः। माण्डव्यः। मद्रवे हितं मद्रव्यं दारु। पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलव्या मृत्तिका। परशव्यमयः। औपगवः। कापटवः। इत्यादि। पूर्व लिखित तद्धित प्रत्यय विधान प्रकरण में सर्वत्र गुण तथा अन्य कार्य जो २ यहां कहे समझने चाहिये। उन विधायक सूत्रों को यहां लिखना

पुनरुक्त होता है । और इस सूत्र को इसी ग्रन्थ के २१ पृष्ठ में लिख चुके हैं परन्तु वहां लिखना चाहिये नहीं था । और व्याख्यान भी स्पष्ट नहीं हुआ है । यहां इस का प्रकरण भी है इस लिये लिखना अवश्य है ॥ ८७४ ॥

ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥ ८७५ ॥ अ० । ६ । ४ । १४७ ॥

तद्धित संज्ञक ढ प्रत्यय परे हो तो कद्रू शब्द को छोड़ के भसंज्ञक प्रातिपदिकों के उवर्ण का लोप होवे जैसे । कमण्डल्वा अपत्यम् । कामण्डलेयः । शैतिबाहेयः । जाम्बेयः । माद्रबाहेयः । इत्यादि यहां कद्रू शब्द का निषेध इस लिये है कि (काद्रवेय ऋषिः) यहां लोप न हो किन्तु पूर्व सूत्र से गुण हो जावे । और यह लोप गुण का ही अपवाद है ॥ ८७५ ॥

यस्येति च ॥ ८७६ ॥ अ० । ६ । ४ । १४८ ॥

यहां तद्धित की अनुवृत्ति के लिये चकार पढ़ा है । तद्धित संज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों तो इवर्णान्त अवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों का लोप हो जैसे । इवर्णान्त का लोप ईकार के परे । दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षी । प्लाक्षी । इत्यादि यहां जो सवर्णदीर्घ एकादेश मान लेवें तो । हे दाक्षि । यहां सवर्णदीर्घ एकादेश पूर्वकार्य से संबुद्धि में ह्रस्व होना परकार्य बलवान् होने से प्रथम हो जाता है फिर जो लोप न कहें तो पीछे सवर्णदीर्घ एकादेश हो कर संबुद्धि में भी दीर्घ ईकार बना रहे । इस लिये ईकार प्रत्यय के परे इवर्णान्त का लोप कहा है । इवर्णान्त का लोप तद्धितप्रत्ययों के परे । दुल्या अपत्यम् । दौलेयः । बलि । बालेयः । पथि । पाथेयः । इत्यादि अवर्णान्त का लोप ईकार प्रत्ययों के परे । कुमारी । किशोरी । गौरी । जानपदी । इत्यादि तद्धित प्रत्ययों के परे । दाक्षिः । प्लाक्षिः । बलाकाया अपत्यम् । बालाकिः । सुमित्राया अपत्यम् । सौमित्रिः । इत्यादि यहां सर्वत्र लोप को आदेश मान के अन्त्य अल् इवर्ण और अवर्ण का लोप होता है । यह भी सूत्र (ओर्गुणः) इसी के समीप पूर्व लिख चुके हैं परन्तु उसी का सा लिखना इस का भी जानो ॥ ८७६ ॥

वा०—यस्येत्यादौ श्यां प्रतिषेधः ॥ ८७७ ॥

(यस्येति च) इत्यादि सूत्रों में जो विभक्ति के स्थान में जो शी आदेश होता है उस ईकार के परे इवर्ण अवर्ण के लोप का निषेध करना चाहिये जैसे । काण्डे । कुड्ये । यहां जब नपुंसक काण्ड और कुड्य शब्दों से परे औ के स्थान में शी हो जाता है तब अवर्ण का लोप प्राप्त है सो न हो । और कुचे । सोम्ये । यहां भी

पूर्व के समान अवर्ण का लोप और आगामी सूत्र से उपधासंज्ञक यकार का लोप प्राप्त है सो न होवे जैसे । श्रियौ । श्रियः । भ्रुवौ । भ्रुवः । इत्यादि में इयङ् उवङ् आदेश होते हैं वैसे ही । वत्सान् प्रीणातीति वत्सप्रीः । लेखाभ्रूः । तस्या अपत्यम् । वात्सप्रेयः । लैखाभ्रेयः । इत्यादि में भी इयङ् उवङ् आदेश प्राप्त हैं परन्तु परविप्रतिषेध मान के इवर्ण उवर्ण का लोप हो जाता है ॥ ८७७ ॥

सूर्य्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ॥ ८७८ ॥ अ० ६ । ४ । १४९ ॥

तद्धित संज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों तो सूर्य्य, तिष्य, अगस्त्य, और मत्स्य शब्दों के उपधासंज्ञक यकार का लोप हो जावे । और अवर्ण का लोप तो पूर्व सूत्र से हो ही जाता है जैसे । सूर्य्येणैकदिक् सौरी बलाका । यहां उपधा ग्रहण ज्ञापक से अवर्ण का लोप असिद्ध नहीं समझा जाता । तिष्येण युक्तः कालः, तैषमहः । तैषी रात्रिः । अगस्त्यापत्यं कन्या, इस विग्रह में ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से अण् प्रत्यय हो जाता है । आगस्ती । आगस्तीयः । मत्स्य शब्द के गौरादि गण में होने से ङीष् हो जाता है । मत्सी । उपधा ग्रहण इस लिये है कि । सूर्य्यचरी यहां सूरी शब्द से भूतपूर्व अर्थ में चरट् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव हुआ है । स्थानिवत् मान के उस यकार का लोप प्राप्त है उपधा के न होने से नहीं होता इत्यादि ॥ ८७८ ॥

वा०—मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ ८७९ ॥

ङीप् प्रत्ययों के परे ही मत्स्य शब्द के उपधा यकार का लोप हो अन्यत्र नहीं जैसे । मत्सी । नियम होने से । मत्स्यस्य विकारो मात्स्यं मांसम् । यहां न हो ॥ ८७९ ॥

वा०—सूर्य्यागस्त्ययोश्छे च ॥ ८८० ॥

छ और ङीप् ङीष् प्रत्ययों के परे ही सूर्य्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो जैसे । सौरीयः । सौरी । आगस्तीयः । आगस्ती । नियम होने से । सौर्य्यो देवतास्य सौर्य्यं हविः । अगस्त्यस्य गोत्रापत्यमागस्त्यः । यहां न होवे ॥ ८८० ॥

वा०—तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ॥ ८८१ ॥

यहां स्वरूपग्रहण परिभाषा का बाधक इस लिये नहीं होता जिस लिये वार्त्तिक पढ़ा है । अर्थात् स्वरूप ग्रहण के न होने में वार्त्तिक ज्ञापक है तद्धित संज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों तो तिष्य और पुष्य शब्दों के उपधा यकार का लोप होवे अन्य पर्यायवाचियों का नहीं जैसे । तिष्येण पुष्येण युक्तः कालः तैषः । पौषः । नियम इस लिये है कि । सैध्यः । यहां लोप न हो ॥ ८८१ ॥

वा०—अन्तिकस्य तसि कादिलोपश्चाद्युदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

याकलीयति । गार्गीयते । वात्सीयते । याकलीयते । इत्यादि च्वि प्रत्यय के परे । गार्गीभूतः । वात्सीभूतः । याकलीभूतः । इत्यादि यहां अपत्यसंज्ञक यकार का ग्रहण इस लिये है कि । सांकाश्यायते । सांकाश्यीभूतः । यहां लोप न हो । और हल् के परे इस लिये कहा है कि । कारिकेयीयति । कारिकेयीभूतः । यहां भी यकार का लोप न होवे ॥ ८८६ ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ ८८७ ॥ अ० । ६ । ४ । १५३ ॥

(नडादीनां कुक् च) इस सूत्र पर नडादिगण के अन्तर्गत बिल्वादि शब्द पढ़े हैं । उन को कुक् का आगम होने से बिल्वक आदि होते हैं । बिल्वक आदि शब्दों से परे छ प्रत्यय का लुक् हो तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हो तो जैसे । बिल्वा यस्यां सन्तीति, बिल्वकीया, तस्यां भवाः, बैल्वकाः । वेणुकीयाः । वैणुकाः । वेत्रकीयाः । वैत्रकाः । इत्यादि यहां छ प्रत्यय का ग्रहण इस लिये है कि कुक् आगम का लुक् न होवे अर्थात् (सन्नियोगशिष्टानां०) इस परिभाषा से कुगागम के सहित लुक् प्राप्त है सो न हो । और लोप की अनुवृत्ति चली आती है फिर लुक् ग्रहण इस लिये किया है कि संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो जावे । लुक् न कहते तो अन्त्य अल् के स्थान में होता ॥ ८८७ ॥

तुरिष्ठेमेयस्सु ॥ ८८८ ॥ अ० । ६ । ४ । १५४ ॥

पूर्व से यहां लुक् की अनुवृत्ति नहीं आती किन्तु लोप की आती है । लुक् होने से अङ्ग कार्य गुण का निषेध प्राप्त है । जो अन्त्य का लोप होवे तो सूत्र ही व्यर्थ होवे क्योंकि टिभाग का लोप तो अगले सूत्र से हो ही जाता । इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् ये तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हों तो तृच् तृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे । प्रत्यय मात्र का लुक् कहा है इस लिये सब का हो जाता है जैसे । अतिशयेन कर्त्ता, करिष्ठः । भृशं विजेता, विजयिष्ठः । दोग्ध्री, अतिशयेन दोहीयसी धेनुः । इत्यादि यहां इमनिच् प्रत्यय उत्तरार्थ है ॥ ८८८ ॥

टेः ॥ ८८९ ॥ अ० । ६ । ४ । १५५ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो भ संज्ञक अङ्गों के टिभाग का लोप होवे जैसे । अतिशयेन पटुः, पटिष्ठः । लघिष्ठः । पटीयान् । लघीयान् । पटिमा । लघिमा । इत्यादि यह लोप गुण का अपवाद सर्वान्त शब्दों में समझना चाहिये । अर्थात् गुण की प्राप्ति में लोप विधान किया है ॥ ८८९ ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ ८९० ॥

(Note: final sutra line partially reads) प्रा०—प्रातिपदिकस्य पृथ्वादिभ्य इमनिच् ... प्रादिभ्यश्चैतासं ...

णिच् प्रत्यय के परे असंज्ञक प्रातिपदिक मात्र को इष्ठन् के समान कार्य होवे। प्रयोजन यह है कि। पुम्बद्भाव, रभाव, टिलोप, यणादिपर, प्रादि आदेश, और इमनिलुक् और कन् प्रत्यय, ये विधि होने के लिये यह वार्त्तिक कहा है जैसे। पुम्बद्भाव। एनीमाचष्टे, एतयति। श्येनीमाचष्टे, श्येतयति। इष्ठन् प्रत्यय के परे पुम्बद्भाव कहा है वैसे ही यहां णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्य जो इष्ठन् के परे होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे भी समझना चाहिये। रभाव। पृथुमाचष्टे, प्रथयति। म्रदयति। यहां (र ऋतो०) इस आगामी सूत्र से इष्ठन् के परे ऋकार को र आदेश कहा है सो णिच् के परे भी हो जाता है। टिलोप। पटुमाचष्टे, पटयति। लघुमाचष्टे, लघयति। यहां इसी (टे.) सूत्र से जो इष्ठन् प्रत्यय के परे टिलोप कहा है वह णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। यणादि पर। स्थूलमाचष्टे, स्थवयति। दूरमाचष्टे, दवयति। इत्यादि यहां अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे यण् के आदि से परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश कहा है सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। प्रादि। अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे प्रिय आदि शब्दों को (प्र) आदि आदेश कहे हैं सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावें जैसे। प्रियमाचष्टे, प्रापयति। स्थिरमाचष्टे स्थापयति। यहां प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ, आदेश होकर (अर्त्तिह्री०) सूत्र में पुक् ग्रहण के होने से प्र, स्थ, को वृद्धि हो कर पुगागम हो जाता है। (विन्मतोर्लुक्) इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् कहा है। सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे जैसे। स्रग्विणमाचष्टे, स्रजयति। वसुमन्तमाचष्टे वसयति। यहां वसु शब्द के उकार का भी लोप हो जाता है और कन्विधि युव और अल्प शब्दों को इष्ठन् प्रत्यय के परे कन् आदेश कह चुके हैं। सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे जैसे। युवानमाचष्टे। अल्पमाचष्टे। कनयति। यवयति। अल्पयति। इत्यादि इस वार्त्तिक के उदाहरणों की गिनती नहीं करदी कि इतने ही स्थलों में इस का प्रयोजन है किन्तु उदाहरण मात्र दिये हैं और भी इस के बहुत प्रयोजन समझने चाहिये ॥ ८८० ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ ८८१ ॥ अ० । ६ । ४ । १५६ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दों के यण् को आदि ले के परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश होवे जैसे (अतिशयेन स्थूलः) स्थविष्ठः। स्थवीयान् (अत्यन्तं दूरं) दविष्ठम्। दवीयः। यहां स्थूल शब्द में (ल) और दूर में (र) भाग का लोप होजाता और पूर्व

ऋकार को गुण होकर रवादेश होता है। युवन्। अतिशयेन युवा, यवीयान् यविष्ठः। इन स्थूल आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ न होने से इमनिच् प्रत्यय नहीं होता। ह्रस्व। ह्रसिष्ठः। ह्रसीयान्। ह्रसिमा। क्षिप्र। क्षेपिष्ठः। क्षेपीयान्। क्षेपिमा। क्षोदिष्ठः। क्षोदीयान्। क्षोदिमा। इन ह्रस्व आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ होने से इमनिच् हो जाता है। यहां पर ग्रहण इस लिये किया है कि यण् को आदि ले के पूर्वभाग का लोप न हो जावे ॥८८१॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहि-गर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥ ८८२ ॥ अ० । ६ । ४ । १५७॥

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ, और वृन्दारक शब्दों के स्थान में प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि, और वृन्द आदेश यथासंख्य करके होवें इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो जैसे। प्रिय–प्र। अतिशयेन प्रियः। प्रेष्ठः। प्रेयान् प्रियस्य भावः प्रेमा। स्थिर–स्थ। स्थेष्ठः। स्थेयान्। स्फिर–स्फ। स्फेष्ठः। स्फेयान्। उरु–वर्। वरिष्ठः। वरीयान्। वरिमा। बहुल–बंहि। बंहिष्ठः। बंहीयान्। बंहिमा। गुरु–गर्। गरिष्ठः। गरीयान्। गरिमा। वृद्ध–वर्षि। वर्षिष्ठः। वर्षीयान्। तृप्र–त्रप्। त्रपिष्ठः। त्रपीयान्। दीर्घ–द्राघि। द्राघिष्ठः। द्राघीयान्। द्राघिमा। वृन्दारक–वृन्द। वृन्दिष्ठः। वृन्दीयान्। प्रिय उरु गुरु बहुल और दीर्घ शब्द पृथ्वादि गण में पढ़े हैं इस कारण उन से इमनिच् प्रत्यय होता है औरों से नहीं होता। इसी लिये उन से इमनिच् प्रत्यय के उदाहरण भी नहीं दिये ॥८८२॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ॥ ८८३ ॥ अ० । ६ । ४ । १५८॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय उन का लोप हो और बहु शब्द का भू आदेश होवे (भू) अनेकाल् आदेश होने से सब के स्थान में होजाता है। और (आदेः परस्य) इस परिभाषा सूत्र से पंचमीनिर्दिष्ट बहु शब्द से उत्तर को कहा लोपरूप आदेश आदि अल् के स्थान में होता है जैसे। अतिशयेन बहुः, भूयान्। भूयांसौ। भूयांसः। बहोर्भावः। भूमा। बहु शब्द पृथ्वादि गण में पढ़ा है। और इस सूत्र में बहु शब्द का दूसरी बार ग्रहण इस लिये है कि प्रत्ययों के स्थान में भू आदेश न हो जावे। इष्ठन् प्रत्यय में विशेष यत्न है कि ॥८८३॥

इष्ठस्य यिट् च ॥ ८८४ ॥ अ० । ६ । ४ । १५९ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् प्रत्यय उस को यिट् का आगम और बहु शब्द को भू आदेश भी होवे जैसे। अतिशयेन बहुः, भूयिष्ठः (यिट्) में से इट् मात्र का लोप हो जाता और यह आगम लोप का अपवाद है ॥८८४॥

और टिलोप का ही अपवाद यह सूत्र है। यहां एकाच् ग्रहण इस लिये है कि अतिशयेन वसुमान् वसिष्ठः। यहां प्रकृतिभाव न होवे किन्तु टिलोप ही हो जावे ॥ ८९९ ॥

वा०–अकल्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥ ९०० ॥

अक प्रत्यय परे हो तो राजन्य मनुष्य और युवन् शब्द प्रकृति करके रहजावें जैसे। राजन्यानां समूहो, राजन्यकम्। मानुष्यकम्। यहां (आपत्यस्यचतद्धितेऽनाति) इस लिखित सूत्र से यकार का लोप प्राप्त है सो न होवे। यूनो भावः, यौवनिका। यहां इस युवन् शब्द का मनोज्ञादि गण में पाठ होने से वुञ् प्रत्यय हुआ है वह से नान्त टिभाग का लोप प्राप्त है सो नहीं होता ॥ ९०० ॥

इनण्यनपत्ये ॥ ९०१ ॥ अ० । ६ । ४ । १६४ ॥

अपत्य रहित अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो तो असंज्ञक इदन्त अङ्ग प्रकृति करके रहजावे जैसे। सांकूटिनम्। सांराविणम्। सांमार्जिनम्। स्रग्विण इदं स्राग्विणम्। इत्यादि। यहां अण् प्रत्यय का ग्रहण इस लिये है कि। दण्डिनां समूहो दाण्डम्। यहां अञ् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव न होवे। और अपत्य का निषेध इस लिये है कि। मेधाविनोऽपत्यं मैधावः। यहां भी प्रकृतिभाव न होवे ॥ ९०१ ॥

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ॥ ९०२ ॥ अ० । ६ । ४ । १६५ ॥

यह सूत्र अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव होने के लिये है। अपत्य संज्ञक अण् प्रत्यय परे हो तो गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्, पणिन्, ये शब्द प्रकृति करके रहें जैसे। गाथिनोऽपत्यम्। गाथिनः। वैदथिनः। कैशिनः। गाणिनः। पाणिनः ॥ ९०२ ॥

संयोगादिश्च ॥ ९०३ ॥ अ० । ६ । ४ । १६६ ॥

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो तो। संयोग से परे इन्भाग का लोप होजावे जैसे। शङ्खिनोऽपत्यं शाङ्खिनः। माद्रिणः। वाज्रिणः ॥ ९०३ ॥

अन् ॥ ९०४ ॥ अ० । ६ । ४ । १६७ ॥

यहां अपत्य की अनुवृत्ति नहीं आती किन्तु सामान्य विधान है। अण् प्रत्यय परे हो तो असंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रहें जैसे। साम्नामयं अंशः, सामनः। वैमनः। सौत्वनः। जैत्वनः। इत्यादि ॥ ९०४ ॥

ये चाभावकर्मणोः ॥ ९०५ ॥ अ० । ६ । ४ । १६८ ॥

भाव कर्म अर्थों को छोड़ के अन्य अर्थों में विहित यकारादि तद्धित प्रत्यय परे हो तो असंज्ञक अन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावें जैसे। सामसु साधु, सामन्यः।

कार्मस्ताच्छील्ये ॥ ८१० ॥ अ० । ६ । ४ । १७२ ॥

ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे हो तो कर्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है जैसे । कर्मशीलः कार्मः । इस कर्मन् शब्द का छत्रादि गण में पाठ होने से शील अर्थ में ण प्रत्यय होता है । यह सूत्र नियमार्थ है कि । कर्मण इदं कार्मणम् । इत्यादि में टिलोप न होवे ॥ ८१० ॥

औक्षमनपत्ये ॥ ८११ ॥ अ० । ६ । ४ । १७३ ॥

अपत्याधिकार को छोड़ के अन्य अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो तो औक्ष शब्द में टिलोप निपातन किया है जैसे । उक्ष्ण इदं औक्षम् । अपत्य का निषेध इस लिये है कि । उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः । यहां निषेध न होवे ॥ ८११ ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनि-
भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ॥ ८१२ ॥
६ । ४ । १७४ ॥

इस सूत्र में दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वाशिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय, और हिरण्मय । इन शब्दों में तद्धित प्रत्ययों के परे टिलोप आदि कार्य निपातन से माने हैं । दण्डिन् और हस्तिन् शब्द नडादि गण में पढ़े हैं इन से फक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन से किया है जैसे । दण्डिनो गोत्रापत्यं दाण्डिनायनः । हास्तिनायनः । अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है । उपचारोपाधि मान के अथर्वा ऋषि के बनाये ग्रन्थ को भी अथर्वन् कहते हैं । उस के पढ़ने जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है जैसे । अथर्वाणमधीते वेत्ति वा आथर्वणिकः । जिह्माशिन् शब्द शुभ्रादि गण में पढ़ा है उस से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है जैसे । जिह्माशिनोऽपत्यं जैह्माशिनेयः । गोत्रसंज्ञारहित युवसंज्ञक वाशिन् शब्द से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय के परे टिलोप का निषेध निपातन किया है जैसे । वाशिनोऽपत्यं, वाशिनायनिः । भ्रूणहन् और धीवन् शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय के परे इन के नकार को तकारादेश निपातन किया है जैसे । भ्रूणघ्नो भावः, भ्रौणहत्यम् । धीवनो भावः, धैवत्यम् । भ्रूणहन् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के ञित् होने से (हनस्तोऽचिण्णलोः) इस सूत्र से तकारादेश हो जाता फिर निपातन नियमार्थ है कि अन्य तद्धित प्रत्ययों के परे इन को तकारादेश न होवे जैसे । भ्रूणघ्नोऽपत्यं भ्रौणघ्नः । धैवनः । यहां अण् प्रत्यय हुआ है । सरयू शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय के परे यू भाग का लोप निपातन

प्राप्त है उस को बाध के आकारादेश होवे जैसे। देविकायां भवं, दाविकमुदकम्। यदेविका नाम किसी नदीविशेष का है। देविकाकूले भवाः, दाविकाः शालयः। पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का। पूर्वदेविकायां भवः, पूर्वदाविकः यहां भी (प्राचांग्राम०) इस आगामी सूत्र से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है उस का अपवाद आकार ही हो जाता है। शिंशपाया विकारः, शांशपचमसः। यह शिंशपा शब्द (शीशों) वृक्ष का नाम है। उस के अनुदात्तादि होने से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। शिंशपास्थले भवाः, शांशपास्थलाः। और पूर्वशिंशपा शब्द प्राचीन ग्राम की संज्ञा है उस को भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है, जैसे। पूर्वशिंशपायां भवः पूर्वशांशपः। दित्यवाट्। दित्यौह इदं, दात्यौहम्। यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है। दीर्घसत्रं। दीर्घसत्रे भवं, दार्घसत्रम्। श्रेयसि भवं। श्रायसम् ॥ ८१६ ॥

वा०-वहीनरस्येद्वचनम् ॥ ८१७ ॥

जित् णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो वहीनर शब्द के आदि अच् को इकारादेश होवे जैसे। वहीनरस्यापत्यं वैहीनरिः। यहां इकारादेश वृद्धि की प्राप्ति में नहीं कहा इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता। आदेश किये इकार को वृद्धि हो जाती है। और किन्हीं-रूपि लोगों का इस विषय में यह अभिप्राय है कि विहीनर शब्द से ही प्रत्यय होता है। अर्थात् यह ऐसा ही शब्द है। कामभोगाभ्यां विहीनो नरः, विहीनरः। यहां पृषोदरादि मान के एक नकार का लोप हो जाता है। जिन के मत में विहीनर शब्द है उन के मत में वार्त्तिक नहीं करना चाहिये ॥ ८१७ ॥

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ ८१८ ॥ अ० ॥ ७। ३। २ ॥

केकय, मित्रयु, और प्रलय शब्दों के यकार से आगे परभाग को इय आदेश होवे ञित् णित् कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो और आदि अच् को वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध ही है जैसे। केकयस्यापत्यं केकयानां राजा वा कैकेयः। यहां जनपद क्षत्रियवाची केकय शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ है। मित्रयुभावेन श्लाघते। मैत्रेयिकया श्लाघते। यहां गोत्र वाची मित्रयु शब्द से श्लाघा-अर्थ में वुञ् प्रत्यय हुआ है। प्रलयादागतं प्रालेयमुदकम्। यहां आगत अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ८१८ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥ ८१९ ॥ अ० ॥ ७। ३। ३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों तो यकार वकार से परे अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो किन्तु उन यकार वकार से पूर्व ऐच् आ

दिशोऽमद्राणाम् ॥ ८३१ ॥ अ० । ७ । ३ । १३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो दिशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द को छोड़ के जनपद देशवाची उत्तरपद उन के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । पूर्वपञ्चाला निवासोऽस्य, पूर्वपाञ्चालकः । अपरपाञ्चालकः । दक्षिणपाञ्चालकः । इत्यादि यहां भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है । यहां दिशावाची का ग्रहण इस लिये है कि । पूर्वः पञ्चालानां, पूर्वपञ्चालाः । पूर्वपञ्चालेषु भवः, पौर्वपञ्चालकः । आपरपञ्चालकः । यहां एकदेशी समास में पूर्व तथा अपर शब्द दिशावाची नहीं किन्तु अवयववाची हैं इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती । मद्रशब्द का निषेध इस लिये है कि । पूर्वमद्रेषु भवः, पौर्वमद्रः । आपरमद्रः । यहां शैषिक अण् प्रत्यय के परे उत्तरपदवृद्धि नहीं होती ॥ ८३१ ॥

प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ ८३२ ॥ अ० । ७ । ३ । १४ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो प्राचीन आचार्यों के मत में दिशावाची शब्दों से परे जो ग्राम और नगरवाची उत्तरपद उन के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो जैसे । ग्राम । पूर्वेषुकामशम्यां भवः, पूर्वैषुकामशमः । अपरैषुकामशमः । पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः । अपरकार्ष्णमृत्तिकः । नगरों में । पूर्वमथुरायां भवः, पूर्वमाथुरः । अपरमाथुरः । पूर्वस्रौघ्नः । दक्षिणस्रौघ्नः । इत्यादि ॥ ८३२ ॥

संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च ॥ ८३३ ॥ अ० । ७ । ३ । १५ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो संख्यावाची शब्दों से परे जो सम्वत्सर और संख्यावाची उत्तरपद उन के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । द्विसम्वत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विसांवत्सरिकः । द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विषाष्टिकः । द्विसाप्ततिकः । द्व्याशीतिकः । इत्यादि यहां सम्वत्सर के ग्रहण से उत्तर सूत्र में परिमाणान्त ग्रहण में काल परिमाण का ग्रहण नहीं होता इस से । द्वैसमिकः । त्रैसमिकः । यहां उत्तरपदवृद्धि नहीं होती । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । यहां परिमाणवाची से आया लोप प्रत्यय भी नहीं होता ॥ ८३३ ॥

वर्षस्याभविष्यति ॥ ८३४ ॥ अ० । ७ । ३ । १६ ॥

यहां संख्यावाची की अनुवृत्ति आती है । भविष्यत् अर्थ को छोड़ के अन्य अर्थों में ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हो तो संख्यावाची शब्दों

अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हुआ है। इसमें प्रत्यय के आश्रय जो वृद्धि है सो प्रत्यय को मान के विकल्प से नहीं हो सकती इस लिये यह सूत्र कहा है॥१४॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥१४८॥ अ० । ७। ३। ३०॥

ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो नञ् से परे जो शुचि ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, और निपुण उत्तरपद उन के अचों में आदि अच को नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो जैसे शुचि अशुचेर्भाव आशौचम्। अशौचम्। (ईश्वर) अनीश्वरस्य भाव, आनैश्वर्यम्। अनैश्वर्यम्। क्षेत्रज्ञ आक्षेत्रज्ञ्यम्। अक्षैत्रज्ञ्यम् कुशल। अकुशलस्य भाव, आकौशलम्। अकौशलम्। (निपुण) आनैपुणम्। अनैपुणम् ॥१४८॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥१४९॥ अ० । ७। ३। ३१॥

ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो नञ् से परे जो यथातथ और यथापुर उन के अचों में आदि अचों को पर्याय से वृद्धि हो अर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को नहीं और जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होवे जैसे। अयथातथा भाव, आयथातथ्यम्। अयाथातथ्यम्। आयथापुर्यम्। अयाथापुर्यम्। अयथातथा और अयथापुर ये दोनों शब्द ब्राह्मणादि गण में पढ़े हैं इस से ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥१४९॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीनिर्मितो व्याख्यात्मकः
स्त्रैणताद्धितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ।

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले ।
पञ्चम्यां शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः ॥

सम्वत् १९३८ मार्गशीर्ष शु ५ शनिवार के दिन यह स्त्रैणताद्धित ग्रन्थ
श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पूरा किया।